INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION IDE
Rajiv Gandhi University

BAHIN101
सामान्य हिंदी-एक (I)

BA (HINDI)

1ST SEMESTER

Rajiv Gandhi University
www.ide.rgu.ac.in

सामान्य हिंदी एक (I)

बी.ए. (हिंदी)

(प्रथम सत्र)

BAHIN-101

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Ashutosh Kumar Mishra, Assistant Professor, Department of Hindi, Dr. Hari SinghGaur Vishwavidhyalaya, Sagar. (MP)

Dr. Amrendra Tripathi, Associate Professor, Department of Hindi, Mahatma Gandhi Kendriya Vishwavidhyalaya, Mothart, Bihar

Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Infomation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.
Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च संस्थानों (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्र ी व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा .मी . हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमफिल व . एड का कोर्स भी चलाता है। .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .पी

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया

है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देशविदेश के - प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र परीक्षाओं में भी NET | सफल हुए हैं

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक बाधाओं को दूर करने का - यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी - भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए (आईटीई) आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है। (

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री** -**(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम** शैक्षिक कार्यक -**(सीसीपी)**्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी .ए.

के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य .ए.अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

सामान्य हिन्दी-एक (I)

Syllabi- BAHIN-101	Mapping in Book
इकाई 1 : हिन्दी साहित्य का इतिहास-I हिंदी साहित्य का आरंभ, हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन एवं नामकरण के कारण एवं आधार, हिंदी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन और नामकरण की परंपरा, हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन और नामकरण, आदिकाल का काल विभाजन, आदिकाल का नामकरण, भक्तिकाल का काल विभाजन और नामकरण, रीतिकाल का काल विभाजन और नामकरण। आधुनिक काल का काल विभाजन और नामकरण	**इकाई 1 : हिंदी साहित्य का इतिहास-I**
इकाई 2 : कविता – I कबीरदास ,कबीर की भक्ति भावना ,पाठ्यांश : कबीरदास ,सामान्य परिचय : ,पाठ्यांस : सूरदास ,सामान्य परिचय : सूरदास ,कबीरदास का सामाजिक पक्ष सूरदास की भक्ति भावना ,सूरदास का वात्सल्य वर्णन	**इकाई 2 : कविता –I**
इकाई 3 : कविता – I मीराबाई : सामान्य परिचय, मीराबाई : पाठ्यांस, मीरा की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना, बिहारी : सामान्य परिचय, बिहारी : पाठ्यांस, बिहारी की काव्यगत विशेषताएं, बिहारी की बहुज्ञता	**इकाई 3 : कविता – I**
इकाई 4 : व्याकरण - I परिचय, लिंग, कारक, वचन, काल, वाक्य शुद्धि	**इकाई 4 : व्याकरण – I**
इकाई 5 : निबंध लेखन –I • विज्ञान से संबंधित विषय • समसामयिक विषय	**इकाई 5 : निबंध लेखन –I**

विषय-सूची

परिचय

इकाईः 1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - I

1.0 परिचय

1.1 इकाई के उद्देश्य

1.2 हिंदी साहित्य का आरंभ

1.3 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन एवं नामकरण के कारण एवं आधार-

1.4 हिंदी साहित्य के इतिहास के कालविभाजन और नामकरण की परंपरा-

1.5 हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण-

1.51. आदिकाल का काल विभाजन

1.5.2 आदिकाल का नामकरण

1.5.3 भक्तिकाल का काल विभाजन और नामकरण

1.5.4 रीतिकाल का काल विभाजन और नामकरण ।

1.5.5 आधुनिक काल का काल विभाजन और नामकरण

1.5.6 सारांश

1.5.7 मुख्य शब्दावली

1.5.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1.5.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाईः 2 कविता I -

2.0 कबीरदास ,सामान्य परिचय :

2.1 कबीरदास पाठ्यांश :

2.3 कबीर की भक्ति भावना

2.4 कबीरदास का सामाजिक पक्ष

2.5 सूरदास सामान्य परिचय :

2.6 सूरदास पाठ्यांस :

2.7 सूरदास का वात्सल्य वर्णन

2.8 सूरदास की भक्ति भावना
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.12 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाईः 3 कविता - I

3.1 मीराबाई : सामान्य परिचय
3.2 मीराबाई : पाठ्यांस
3.3 मीरा की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना
3.4 बिहारी : सामान्य परिचय
3.5 बिहारी : पाठ्यांस
3.6 बिहारी की काव्यगत विशेषताएं
3.7 बिहारी की बहुज्ञता
3.8 सारांश
3.9 मुख्य शब्दावली
3.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाईः 4 **व्याकरण - I**

4.0 परिचय
4.1 लिंग
4.3 कारक
4.4 वचन

4.5 काल

4.6 वाक्य शुद्धि

4.7 सारांश

4.8 मुख्य शब्दावली

4.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

4.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 : निबंध लेखन –I

5.0 परिचय

5.1 विज्ञान से संबंधित विषय

5.2 समसामयिक विषय

इकाई 1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - I

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय

1.1 इकाई के उद्देश्य

1.2 हिंदी साहित्य का आरंभ

1.3 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन एवं नामकरण के कारण एवं आधार-

1.4 हिंदी साहित्य के इतिहास के कालविभाजन और नामकरण की परंपरा-

1.5 हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण-

1.51. आदिकाल का काल विभाजन

1.5.2 आदिकाल का नामकरण

1.5.3 भक्तिकाल का काल विभाजन और नामकरण

1.5.4 रीतिकाल का काल विभाजन और नामकरण ।

1.5.5 आधुनिक काल का काल विभाजन और नामकरण

1.5.6 सारांश

1.5.7 मुख्य शब्दावली

1.5.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1.5.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

हिंदी साहित्य का इतिहास एक ऐसा माध्यम है जिसके करीब से गुज़र कर ही तमाम हिंदीभाषी विद्यार्थी, पाठक वर्ग एवं इतिहास के जिज्ञासु, 'हिंदी साहित्य ने परम्परा से आधुनिकता तक किस प्रकार अपना पाँव फैलाया और जमाया' इससे अवगत हो पाते हैं। देश भर के विद्यार्थियों को हिंदी साहित्य के इतिहास का परिचय शिक्षा के विविध स्तरों पर अनुकूल तरीकों से दिया जाता है। यह काम जितना आवश्यक है उतना ही मुश्किल भी। इसमें काफ़ी जटिलताएँ हैं।

हिंदी साहित्य लेखन का वास्तविक सूत्रपात 19वीं शताब्दी से माना जाता है। यद्यपि मध्यकाल में रचित वार्ता साहित्य; यथा चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, भक्तमाल, आदि में अनेक कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय मिल जाता है, किन्तु इतिहास लेखन के लिए जो कालक्रमानुसार वर्णन अपेक्षित होता है, उसका नितांत अभाव इन वार्ता ग्रंथों में है, अतः इसे साहित्य का इतिहास ग्रंथ मानना उचित नहीं।

हिंदी का सर्वाधिक सुव्यवस्थित, लोकप्रिय इतिहास 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' है। इसमें कवियों की संख्या की अपेक्षा कवियों के कृतित्व पर अधिक ध्यान दिया गया है । काव्य धाराओं का जैसा विवेचन इस ग्रन्थ में है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं ।

इस इकाई में हिंदी साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन और आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिककाल का नामकरण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे तथा आदिकाल की परिस्थितियों और प्रवृतियों की विवेचना कर पाएंगे ।

1.1 इकाई के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप -

* हिंदी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन और नामकरण में उत्पन्न कठिनाइयों को समझ पाएंगे;

* हिंदी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन और नामकरण के आधारों को पहचान पाएंगे;

* हिंदी साहित्य के काल-विभाजन के लिए अपनी समझ बना पाएंगे;

* आदिकाल की परिस्थितियों एवं उनकी प्रवृत्तियों से अवगत हो पाएंगे।

1.2 हिंदी साहित्य का आरंभ

हिंदी साहित्य के इतिहास के आरंभ को लेकर हिंदी के विद्वानों का एकमत नहीं है। कुछ विद्वान इसकी शुरुआत सातवीं सदी से मानते हैं तो कुछ ग्यारहवीं सदी से स्वीकार करते हैं। हिंदी साहित्य के आरंभिक इतिहास लेखकों में से शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में सातवीं सदी के पुष्प नामक कवि को पहला कवि घोषित किया एवं हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं सदी से माना। सेंगर की यह घोषणा जनश्रुतियों पर आधारित थी जिसे उनके बाद के इतिहासकारों ने अस्वीकार किया। परवर्ती अनुसंधानों से पता चला कि पुष्प कोई और नहीं बल्कि दसवीं शताब्दी में विद्यमान अपभ्रंश का सुप्रसिद्ध कवि पुष्पदंत है।

हिंदी साहित्य के आरंभ को लेकर सबसे अधिक विवादस्पद केंद्र अपभ्रंश है। पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और पंडित राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वानों ने अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' या 'प्राकृताभास हिंदी' मानकर उसे हिंदी साहित्य के इतिहास में स्थान तो दे दिया परन्तु भाषा वैज्ञानिक और व्याकरणिक आधारों पर अपभ्रंश हिंदी से भिन्न भाषा है। इसीलिए भारत की किसी भी अन्य आधुनिक भाषा में अपभ्रंश की रचनाओं को जगह नहीं मिली है।

'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' में विश्वनाथ त्रिपाठी ने इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया है -"हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारम्भ तब हुआ होगा जब हिंदी में रचना प्रारम्भ हुई होगी। भाषा का प्रवाह धारा के प्रवाह के समान होता है।ठोस वस्तुओं की तरह उसका विभाजन संभव नहीं। पूर्ववर्ती भाषा के कुछ ऐसे तत्त्व आ गए होंगे, जिनके कारण वह भाषा, जिसे हम हिंदी कहते हैं, कुछ विशिष्ट हो गयी होगी। प्रश्न है कि ये विशेषताएं कौन-सी हैं।विद्वानों ने हिंदी को विशिष्ट बनाने वाली तीन भाषा -प्रवृत्तियों की चर्चा की है :-

1. क्षतिपूरक दीर्घिकरण,जैसे प्राकृत-अपभ्रंश के कज्ज, कम्म, हत्थ जैसे शब्द हिंदी में काज, काम, हाथ बन गये।
2. प्रसर्गों की प्रयोग बहुलता, जैसे- घरहिं के स्थान पर 'घरहिं मांझ' एवं
3. तत्सम शब्दों का प्रचलन।'

स्पष्ट है कि अपभ्रंश भाषा जब उपर्युक्त प्रवृतियों से युक्त होने लगी तब ही हिंदी के विद्वानों ने उसे 'पुरानी हिंदी', 'प्राकृताभास हिंदी' और 'देशी भाषा' कहना प्रारम्भ किया। अब सवाल यह है कि अपभ्रंश की वे कौन सी रचनाएं हैं जिनमें इन प्रवृतियों के आरंभिक प्रयोग मिलते हैं। इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने इतिहास ग्रंथ में लिखते हैं - प्राकृत की अंतिम अवस्था से ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जैसे 'गाथा' कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही 'दोहा' या 'दूहा' कहने से अपभ्रंश या प्रचलित काव्यभाषा का पद्य समझा जाता था। अपभ्रंश या प्राकृताभास हिंदी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है। मुंज और भोज के समय के लगभग तो ऐसी अपभ्रंश या पुरानी हिंदी का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य या काव्य रचनाओं में भी पाया जाता है।"

पंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सिद्ध कवि सरहपा (सन् 760) हिंदी के पहले कवि हैं और हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं सदी से ही हो जाता है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने सातवीं से ग्यारहवीं सदी की तमाम रचनाओं पर विस्तार से विचार किया और उन्हें प्रामाणिक, अर्द्ध प्रामाणिक और संदिग्ध रचनाओं में वर्गीकरण के बाद हिंदी की पहली प्रामाणिक रचना के रूप में 'संदेश रासक' की ओर संकेत किया। ग्यारहवीं शती की अपनी रचना 'संदेश रासक' में अब्दुर्रहमान ने लिखा था कि वह एक ऐसी भाषा में अपनी रचना कर रहे हैं जो आम आदमी को समझ में आनेवाली है। 'संदेश रासक' की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश है मगर उसका झुकाव देशी भाषा की ओर है। नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो', शालिभद्र सूरि कृत 'भरतेश्वर बाहुबलि रास', (रचनाकाल1184ई.)जैसी कृतियों का भी इतिहास के कई ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। कई जगह अमीर खुसरो, विद्यापति आदि का भी हिंदी के पहले कवि के रूप में वर्णित किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी के पहले रचनाकार की प्रामाणिक पहचान कठिन है, परन्तु एक बात तो निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि ग्यारहवीं सदी के आरंभ से ही अपभ्रंश से भिन्न देशी भाषाओं में साहित्य लेखन के ठोस और क्रमबद्ध प्रमाण मिलने लगते हैं। इसमें रोड़ाकृत राउलवेल(11वीं शती), आचार्य हेमचंद्रकृत 'प्राकृत व्याकरण' दामोदरकृत 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण',चक्रधर स्वामी(1194-1274 ई.) के पद, रेवंतगिरि रास(1231 ई.) आदि उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि हिंदी भाषा में साहित्य लेखन की शुरुआत सन् 1000 के आसपास होने लगी थी।

1.3 हिंदी साहित्य के काल-विभाजन, नामकरण के कारण एवं आधार

इतिहास को स्पष्ट रूप से समझने के लिए काल-विभाजन और नामकरण आवश्यक है। किसी भी चीज का व्यवस्थित अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है। इसके बिना दिशाहीनता की स्थिति उतपन्न हो सकती है। वस्तुतः काल-विभाजन से साहित्य के विकास की दिशा, विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्वों, विभिन्न परिवर्तनों और मोड़ों का पता चलता है। साहित्य सतत प्रवाहमान है तथा प्रत्येक समय की परिस्थितियां बदलती रहती है। अतः उन परिस्थितियों के अनुसार काल-विभाजन एवं नामकरण आवश्यक होता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन के साथ साथ किसी भी इतिहास के काल-विभाजन की अपनी अनेकानेक मुश्किलें होती हैं। प्रत्येक समाज और उसमें सृजित साहित्य की अपनी विशेषताएँ होती हैं। समाज और साहित्य का रिश्ता बेहद जटिल होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' के प्रथम संस्करण की भूमिका में लिखा है कि,"शिक्षित जनता की जिन-जिन प्रवृतियों के अनुसार हमारे साहित्य स्वरूप में जो जो परिवर्तन होते आये हैं, जिन-जिन प्रभावों की प्रेरणा से काव्य-धारा की भिन्न-भिन्न शाखाएं फूटती रही हैं, उन सबके सम्यक निरूपण तथा उनकी दृष्टि से किये हुए सुसंगत कालविभाग के बिना साहित्य के इतिहास का सच्चा अध्ययन कठिन दिखाई पड़ता था। सात आठ सौ वर्षों की संचित ग्रंथराशि सामने लगी हुई थी; पर ऐसी निर्दिष्ट, सरणियों की उद्भावना नहीं हुई थी जिसके अनुसार सुगमता से इस प्रभूत सामग्री का वर्गीकरण होता। भिन्न-भिन्न शाखाओं के हज़ारों कवियों की केवल कालक्रम से गुंथी उपर्युक्त वृतमालाएँ साहित्य के इतिहास अध्ययन में कहां तक सहायता पहुँचा सकती थीं? सारे रचनाकाल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खण्डों को आंख मूंदकर बांट देना- यह भी न देखना कि खण्ड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं, किसी वृत्तसंग्रह को इतिहास नहीं बनाया जा सकता।"

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन और नामकरण केवल पद्धतिगत अनिवार्यता न होकर उस इतिहास बोध की तलाश होती है जिसके भीतर मानवीय चेतना और उसके विशिष्ट कला व्यापारों की निर्मिति होती है। इतिहासकार के अलोचनात्मक विवेक के बिना इस इतिहास बोध का निर्माण नहीं हो सकता। यह विवेक साहित्य और समाज के रिश्ते के साथ-साथ ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में आ रहे बदलावों के स्वरूप की भी पहचान करता है। इतिहासकार अपने समय के सवालों के समाधान के लिए भी इतिहास की सैर करता है।

आधार -

काल विभाजन के कई आधार हो सकते हैं। जैसे -

1. करता के आधार पर - प्रसाद युग, भारतेंदु युग, द्विवेदी युग।
2. प्रवृति के आधार पर - भक्तिकाल, संतकाव्य, सूफ़ीकाव्य, रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद।
3. विकासवादिता के आधार पर - आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल।

4. सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं के आधार पर - राष्ट्रीय धारा, स्वातन्त्र्योत्तर काल, स्वच्छंदतावाद आदि।

इस संबंध में उल्लेखनीय बिंदु निम्नवत् हैं :

(1) काल विभाजन साहित्यिक प्रवृतियों की समानता के आधार पर होना चाहिए।
(2) कालों का नामकरण यथासंभव मूल चेतना (प्रधान प्रवृति) को आधार बनाकर करना चाहिए।
(3) युगों (कालों) का सीमांकन मूल प्रवृतियों के आरंभ और समापन के अनुसार होना चाहिए।
(4) काल की मूल प्रवृति का निर्धारण प्रमुख ग्रंथों के आधार पर करना चाहिए।

1.4 हिंदी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन और नामकरण की परंपरा।

गार्सा-द-तासी, शिवसिंह सेंगर, ने काल-विभाजन का कोई प्रयास नहीं किया। साहित्य के काल-विभाजन का पहला प्रयास डॉ.जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ नार्दर्न हिंदुस्तान' (सन् 1888 ई.) ग्यारह अध्यायों में विभक्त किया है। उनका प्रत्येक अध्याय एक काल क्रम को व्यक्त करता है। इन्होंने लेखकों एवं कवियों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण किया है , उनका काल-विभाजन में वैज्ञानिकता का आभाव है तथा अध्यायों की संख्या अधिक होने से उसे काल-विभाजन नाम देना उपयुक्त नहीं है।

ग्रियर्सन की तुलना में मिश्रबंधुओं ने अपने इतिहास ग्रंथ 'मिश्र-बंधुविनोद' (1913 ई.) में अपेक्षाकृत तार्किक और व्यवस्थित काल विभाजन किया है -

1. आरम्भिक काल -
(क) पूर्वारम्भिक काल (700 - 1343 वि.)
(ख) उत्तरारम्भिक काल (1344 - 1444 वि.)
2. माध्यमिक काल -
(क) पूर्व माध्यमिक काल(1445 - 1560
(ख) प्रौढ़ माध्यमिक काल(1561 - 1680 वि.)
3. अलंकृत काल -
(क) पूर्वालंकृत काल - (1681 - 1790 व
(ख) उत्तरालंकृत काल - (1791 - 1889 वि.)
4. परिवर्तन काल - (1890 - 1925 वि.)
5. वर्तमानकाल - (1926 वि. से अब तक)

मिश्रबंधुओं के काल विभाजन पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने असंतोष जताते हुए लिखा है - सारे रचना काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर, इत्यादि खण्डों में आंख मूंदकर बांट देना - यह भी न देखना कि किस खण्ड के भीतर क्या आता है और क्या नहीं - किसी वृत संग्रह को इतिहास नहीं बनाया जा सकता। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'मिश्रबंधु विनोद' के ढांचे को ही संस्कारित कर 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) की रचना की जिसमें सर्वमान्य काल विभाजन है

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का काल-विभाजन-

(1. वीरगाथाकाल (संवत् 1050 - 1375 वि.)
2. भक्तिकाल (संवत् 1375 - 1700 वि.)
3. रीतिकाल (संवत् 700 - 1900 वि.)
4. गद्यकाल (संवत् 1900 - 1984 वि.)

शुक्लजी ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में दोहरा नामकरण करते हुए उसका प्रारूप निम्न प्रकार दिया है :

1. आदिकाल (वीरगाथाकाल) (1050-1347 वि.)
2. पूर्व मध्यकाल(भक्तिकाल) (1375-1700 वि.)
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) (1700-900 वि.)
4. आधुनिक काल (गद्य काल) (1900-1984 वि.)

उपर्युक्त काल विभाजन से स्पष्ट है कि जिसे हम आदिकाल के नाम से जानते हैं उसे शुक्ल जी वीरता की प्रवृत्ति को प्रधान मानकर उसका नाम वीरगाथाकाल देने की कोशिश की। शुक्लजी की काल विभाजन पद्धति का आधार तर्कसंगत एवं पुष्ट है। उनका काल विभाजन सरल एवं सुस्पष्ट है। अतः अधिकतर परवर्ती इतिहासकारों ने उसी का आधार ग्रहण किया है।

डॉ. रामकुमार वर्मा का काल-विभाजन -

(1) संधि काल (सं. 750 - 1000 वि.)
(2) चारण काल (सं. 1000-1375 वि.)
(3) भक्ति काल (सं. 1375-1700 वि.)
(4) रीतिकाल (सं. 1700-1900 वि.)
(5) आधुनिक काल (सं. 1900-से अब तक)

डॉ. गनपतिचंद्र गुप्त का काल-विभाजन

(1) आदिकाल (सन् 1184-1350 ई.)
(2) पूर्व मध्यकाल (सन् 1350- 1600 ई.)
(3) उत्तर मध्यकाल (सन् 1600-1857 ई.)
(4) आधुनिक काल (सन् 1857- से अब तक)

डॉ. बच्चन सिंह का काल-विभाजन
(1) अपभ्रंश काल
(2) भक्तिकाल (सन् 1400-1650)
(3 रीतिकाल (सन् 1650-1857)
(4) आधुनिक काल (सन् 1857-से अब तक)

उपर्युक्त काल विभाजन और नामकरण से सिद्ध होता है कि यह परम्परा डॉ.जॉर्ज गिरयर्सन से शुरु हुई है।

1.5 हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन और नामकरण

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा पर विस्तार से विचार करने के पश्चात यह स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों के सीमांकन के साथ-साथ नामकरण के विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत है जिसके वजह से हिंदी के विद्यार्थियों के लिए साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण को लेकर काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। अतः इसके समाधान के लिए हम हिंदी साहित्य के विभिन्न कालो पर अलग-अलग विचार करेंगे।

1.5.1 आदिकाल का काल विभाजन

हिंदी साहित्य के आरंभिक काल के नामकरण से लेकर सीमांकन तक को लेकर विद्वानों में सर्वाधिक मतभेद है। सबसे पहले हम समय पर विचार करते हैं। हिंदी साहित्य के आरम्भ को लेकर मुख्यतया दो मतभेद है। पहला यह है कि अभ्रंश को हिंदी साहित्य के इतिहास में शामिल किया जाय या नहीं, और दूसरा नाथों-सिद्धों के साहित्य को शुद्ध साहित्य की श्रेणी में रखा जाय या नहीं। अपभ्रंश-साहित्य के स्वीकार-अस्वीकार को लेकर विद्वानों में काफी विवाद उत्पन्न हुआ और अंततः सभी विद्वानों का एक मत हुआ कि अपभ्रंश के परवर्ती काल में रचित उन रचनाओं को हिंदी साहित्य के इतिहास में शामिल किया जाना चाहिए जिनमें देशी भाषाओं की ओर झुकाव की प्रवृति है। इस आधार पर हिंदी साहित्य के इतिहास का आरम्भ 1000 ई. से मानना ज्यादा उचित है।

आदिकाल के आरम्भ की तरह ही उसकी अंतिम सीमा भी विवादास्पद है। ग्रियर्सन इसकी अंतिम सीमा 1400 ई., मिश्रबन्धु 1389 ई., आचार्य रामचंद्र शुक्ल 1318 ई., आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 1400 ई. और गणपति चन्द्र गुप्त 1350 ई. मानते हैं। सर्वमान्य आदिकाल का अंत चौदहवीं सदी का मध्य अर्थात 1350 ई. माना गया।

1.5.2 आदिकाल का नामकरण

जैसा कि हम ऊपर समझ चुके हैं आदिकाल के नामकरण को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। विभिन्न विद्वानों ने आदिकाल के नाम को निम्न रूप से प्रस्तुत किया है -

चारण काल : ग्रियर्सन
प्रारम्भिक काल : मिश्र बंधु
वीरगाथा काल : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
आदिकाल : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
चारण काल : डॉ. रामकुमार वर्मा
सिद्ध-सामन्त युग : राहुल सांकृत्यायन
बीजवपन काल : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
वीरकाल : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

उपर्युक्त तमाम नामों में आदिकाल ही वह नाम है जिसे लगभग सभी इतिहासकारों ने अंततः स्वीकार किया है। 'आदिकाल' नाम से हमें हिंदी साहित्य की उस व्यापक पृष्ठभूमि का भी बोध होता है जिस पर आगे चलकर हिंदी साहित्य का विशाल महल खड़ा हुआ है।भाषा की दृष्टि से इसमें हिंदी का आदि रूप मिलता है तो भाव की दृष्टि से भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक सभी प्रमुख प्रवृतियों के आदिम बीज मिल जाते हैं। अतः इस काल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त एवं व्यापक नाम 'आदिकाल' ही है।

1.5.3 भक्तिकाल का काल-विभाजन और नामकरण

यदि आदिकाल का अंत हम 1350 ई. मानते हैं तो स्वाभाविक है कि भक्तिकाल का आरम्भ इसी समय से मानना होगा। तमाम इतिहासकारों द्वारा भक्ति काल के दो नाम सुझाये गये हैं - भक्तिकाल और पूर्वमध्य काल। 'भक्तिकाल' नाम जहां तत्कालीन साहित्य के आंतरिक भाव को अभिव्यंजित करता है वहीं 'पूर्वमध्यकाल' कालबोधक है।

इस युग में हिंदी प्रदेश के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाले रचनाकारों ने अपनी-अपनी मातृभाषाओं के साथ-साथ तत्कालीन समय की केंद्रीय साहित्यिक भाषा ब्रजभाषा और अवधी भाषा में भगवान की भक्ति के माध्यम से मानवीय संवेदना की जैसी अभिव्यक्ति की है वह हिंदी ही नहीं बल्कि तमाम भारतीय साहित्य में भी विरल है।

भक्ति आंदोलन के उदय के सम्बंध में कुछ विद्वानों का अभिमत निम्नलिखित है -

ग्रियर्सन : ईसाइयत की देन
आचार्य रामचंद्र शुक्ल : इस्लामी आक्रमण की प्रतिक्रिया
हजारी प्रसाद द्विवेदी : भारतीय चिंतनधारा का स्वाभाविक विकास
गजानन माधव मुक्तिबोध : ऐतिहासिक-सामाजिक शक्तियों के रूप में जनता के दुःख व कष्टों से हुआ।
रामविलास शर्मा : भक्ति आंदोलन एक जातीय और जनवादी आंदोलन है।
भक्तिकाल को स्वर्णकाल की भी संज्ञा दी गयी है।

1.5.4 रीतिकाल का काल-विभाजन एवं नामकरण

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1700 वि.से 1900 वि. (1643 ई. से 1843 ई.) तक के काल खंड को रीतिकाल कहा है।
'आदिकाल के बाद रीतिकाल' के नामकरण पर भी बहुत विवाद हुआ। इस काल पर विभिन्न विद्वानों द्वारा दिया गया नामकरण निम्न है -

रीतिकाव्य - जार्ज ग्रियर्सन
अलंकृत काल - मिश्रबन्धु
रीतिकाल - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
कला काल : डॉ. रामकुमार वर्मा
काव्यकला काल - रमाशंकर शुक्ल 'रसाल
श्रृंगालकल - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
उत्तर मध्यकाल - गनपतिचंद्र गुप्त

अलंकृत शब्द से केवल उस युग की कविता की ब्राह्म विशेषता ही उभर कर आती है, जबकि उस युग में नीतिपरक दोहे लिखने वाले रहीम और हृदयगत अनुभूतियों से संचालित होने वाले घनानंद जैसे कवि भी हुए। इस नाम से 'लक्षण ग्रंथों' की परंपरा का भी पता नहीं चलता।

'रीति' का शाब्दिक अर्थ मार्ग या पद्धति है। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्यरचना के मार्ग अथवा पद्धति विशेष के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। हिंदी में 'रीतिग्रंथ' उन रचनाओं को कहा जाता है जिनमें काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया गया हो।

1.5.5 आधुनिक काल का काल-विभाजन एव नामकरण

आधुनिक काल के काल-विभाजन को लेकर अधिक मतभेद नहीं है। हिंदी के लगभग सभी विद्वान सन् 1850 से हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत मानते हैं।
आधुनिक काल के लिए जो विभिन्न नाम दिए गए हैं वे इस प्रकार हैं :

1. गद्य काल - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. वर्तमान काल - मिश्रबन्धु
3. आधुनिक काल - डॉ. रामकुमार वर्मा
4. आधुनिक काल - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त

गद्य लेखन की शुरुआत और प्रधानता को देखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल का नाम गद्यकाल रखा परन्तु गद्यकाल कहने से इस काल का प्रचुर परिमाण में लिखा गया पद्य साहित्य उपेक्षित हो जाता है, अतः इस काल को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त है। इस नामकरण में गद्य और पद्य दोनों प्रवृतियों का समावेश तो हो ही जाता है साथ ही यह नाम यह भी बताता है कि इस काल की प्रवृतियां पुरानी परंपरा से हटकर नवीन एवं आधुनिक हो गई हैं। आधुनिक युगबोध ने साहित्य को दरबारी परिवेश से बाहर निकालकर जनजीवन के निकट ला दिया है। गद्य के अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

1.6 सारांश

हिंदी साहित्य के इतिहास की इस इकाई (1.) में आपने यह जाना कि हिंदी साहित्य का आरंभ कहां से शुरू हुआ और अलग-अलग विद्वानों ने इसका वर्गीकरण किस प्रकार किया है। हिंदी साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण के पीछे क्या-क्या कारण रहे और इसका आधार के तौर पर यह जाना कि किसी भी साहित्य का कालविभाजन करता के आधार पर, प्रवृति के आधार पर विकासवादिता के आधार पर तो हो सकता है पर उसमें तर्क, तथ्य और वैज्ञानिकता की मौजूदगी जरूरी है। काल विभाजन की परंपरा और विभिन्न कालों में अलग-अलग विद्वानों ने उसके नाम के पीछे क्या मत रखा और उसका सर्वमान्य काल विभाजन और नामकरण कौन सा है यह भी स्पष्ट किया गया है ।अंत में आदिकाल की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों पर भी विस्तार पूर्वक बातें की गई है।

1.7 मुख्य शब्दावली

आविर्भाव : प्रकट होना।
पूर्वाग्रह। : पहले से निश्चित किया गया मत या विचार
सम्यक। : समुदाय, समूह।
स्वायत्तता : स्व-शासन।
निरूपण : विवेचना करना।
परिवर्द्धित : जिसे बढ़ाया गया हो(जैसे-पुस्तक का नवीन संस्करण परिवर्द्धित हो गया है)
व्यवहृत : व्यवहार में लाया गया।

परिनिष्ठित : पूर्णतया कुशल।
विश्रृंखलता : मुक्त रूप से

1.8 अपनी प्रगति जांचिए' - (प्रश्नोतर)

1. नाथ एवं सिद्ध साहित्य को किसने साम्प्रदायिक कहा है?
(a) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
(b) आचार्य रामचंद्र शुक्ल
(c) मिश्रबन्धु
(d) गणपति चन्द्र गुप्त
उ. (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

2. हिंदी साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन का पहला प्रयास किसने किया?
(a) गार्सा द तासी
(b) शिवसिंह सेंगर
(c) जार्ज ग्रियर्सन
(d) आचार्य रामचंद्र शुक्ल
उ.(जार्ज ग्रियर्सन)

3. आदिकाल के लिए 'चारणकाल' नाम किस विद्वान ने सुझाया?
(a) मिश्रबन्धु
(b) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
(c) डॉ. रामकुमार वर्मा
(d) राहुल सांकृत्यायन
उ.(डॉ. रामकुमार वर्मा)

4. अपभ्रंश से प्रभावित हिंदी में लिखे जाने वाली वीरगाथात्मक काव्य को कहा जाता है -
(a) सिद्ध साहित्य
(b) नाथ साहित्य
(c) जैन साहित्य
(d) रासो साहित्य
उ.(रासो साहित्य)

5. सिद्धों की कुल संख्या कितनी है?
(a) 32
(b) 84
(c) 44
(d) 74

उ.(84)

6. रीतिकाल को अलंकृत काल किसने कहा ?
(a) रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
(b) मिश्रबन्धु
(c) हजारी प्रसाद द्विवेदी
(d) जार्ज ग्रियर्सन
उ.(मिश्रबन्धु)

(7.) भक्तिकाल को ईसाइयत की देन किसने कहा?
(a) गजानन माधव मुक्तिबोध
(b) डॉ.रामविलास शर्मा
(c) ग्रियर्सन
(d) रामकुमार वर्मा
उ.(ग्रियर्सन)

1.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. आदिकाल की सर्वमान्य समय सीमा पर प्रकाश डालिये।

2. काल-विभाजन और नामकरण की परंपरा से क्या तात्पर्य है ?
3. आदिकाल और रीतिकाल का नामकरण विवादस्पद माना गया है । कैसे ?
4. आधुनिक काल से क्या समझते हैं?

दीर्घ - उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण की समस्या पर विचार कीजिये।
2. आदिकाल की परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
3. आदिकालीन साहित्यिक प्रवृतियों को स्पष्ट कीजिए।

1.10 आप इसे भी पढ़ सकते हैं -

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचर्य रामचंद्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास - विश्वनाथ त्रिपाठी।
3. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

इकाईः 2 कविता I –

इकाई की रूपरेखा

2.0 कबीरदास ,सामान्य परिचय :

2.1 कबीरदास पाठ्यांश :

2.3 कबीर की भक्ति भावना

2.4 कबीरदास का सामाजिक पक्ष

2.5 सूरदास सामान्य परिचय :

2.6 सूरदास पाठ्यांस :
2.7 सूरदास का वात्सल्य वर्णन
2.8 सूरदास की भक्ति भावना
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.12 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 कबीरदास : सामान्य परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर एक बहुत बड़ा नाम हैं। वे हिन्दी में भक्तिकाल के प्रवर्तक माने जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा बतायी गयी भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक ही नहीं, सर्वप्रमुख कवि भी कबीर ही हैं। इस काव्यधारा को अब सन्त–काव्यधारा भी कहा जाता है। इस सन्त–काव्यधारा में आगे चलकर जितने भी कवि हुए, उन सब पर कबीर का बड़ा भारी प्रभाव है। सन्त–काव्यधारा ही क्या, प्रभाव तो कबीर का भारतीय जनमानस पर भी जबरदस्त दिखता है। उन्होंने लिखा नहीं, रचा और गाया, जिसे उनके ि"ाष्यों ने लिपिबद्ध कर सुरक्षित किया। प्रचलित मान्यता के अनुसार विधवा ब्राह्मणी के पुत्र कबीर एक जुलाहा परिवार में पले–बढ़े, परन्तु उन्होंने न हिन्दू, न मुसलमान की नीति अपनायी और एक सामान्य मानव धर्म का पन्थ चलाया, जिसमें जाति–धर्म–भाषा–क्षेत्र जैसी मानव–मानव में अन्तर करने वाली बन्दि"ाों के लिये कोई स्थान नहीं था। मनुष्य की पैदाइ"ा नहीं, उसके कर्मों और आचरणों की महत्ता थी। सभी परमात्मा के बन्दे हैं और सभी के भीतर वह विद्यमान है, ऐसी सोच के साथ मानव–मानव में एकता की भावना महत्त्वपूर्ण थी।

2.1 कबीरदास : पाठ्यांश एवं व्याख्या :

साधु को अंग

कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ।

चंदन होसी बाँवना, नीम न कहसी कोई।। 1।।

कठिन शब्दार्थ : कदे–कभी। निरफल–निष्फल, परिणामविहीन। होसी–होने पर भी। कहसी–कहता है। बाँवना–बौना, छोटा।

सन्दर्भ : प्रस्तुत साखी भक्तिकाल की निर्गुण काव्य धारा के अन्तर्गत आने वाली ज्ञानाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि सन्त कबीरदास द्वारा रचित है। कबीर इस साखी में सत्संगति का महत्त्व बताते हुए कहते हैं–

व्याख्या : साधुओं की संगति कभी भी निष्फल नहीं होती। चन्दन चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, उसे कोई नीम नहीं कहता।

विशेष :

1. कबीर यहाँ सत्संगति की महिमा के साथ ही एक अच्छे साधु की विशेषता भी बता रहे हैं कि अच्छे व्यक्ति की संगति का प्रभाव जीवन में पड़ता ही है।
2. चन्दन में सुगन्ध होती है। इसलिये चन्दन का वृक्ष चाहे छोटा ही क्यों न हो, वह लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता ही है। इसी तरह व्यक्ति के सद्गुण उसे पहचान दिलाते हैं।
3. भाषा–सधुक्कड़ी, छन्द–साखी (दोहा)। अलंकार– छेकानुप्रास एवं द्रष्टान्त।

कबीर संगति साधु की, बेगि करीजै जाइ।

दुरमति दूरि गवाँइसी, देसी सुमति बताइ।। 2।।

शब्दार्थ : बेगि–शीघ्रता से। करीजै–कीजिए। दुरमति–दुर्बुद्धि, बुरी बुद्धि। सुमति–सद्बुद्धि।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि यदि साधु की संगति करने को मिले तो उसे तुरन्त करना चाहिए और इस अवसर को गँवाना नहीं चाहिए, क्योंकि इससे हमारी दुर्मति दूर होती है तथा सुमति हमारे भीतर जाग्रत होती है।

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।

साधु संगति हरि भगति बिनु, कछू न आवै हाथ।। 3।।

व्याख्या : चाहे मथुरा चले जाओ, चाहे द्वारिका और यदि इच्छा हो तो जगन्नाथ धाम चले जाओ। परन्तु जब तक साधुओं की संगति नहीं करोगे और भगवान की भक्ति नहीं करोगे, तब तक कुछ हाथ नहीं आने वाला।

विशेष :

1. यहाँ तीर्थों की निरर्थकता के बारे में बताया गया है और सत्संग तथा ईश्वर की सच्चे मन से भक्ति को महत्वपूर्ण बताया गया है।
2. मथुरा, द्वारिका तथा जगन्नाथ हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थस्थल हैं जहाँ करोड़ो लोग प्रतिवर्ष जाते हैं।

मेरे संगी दोइ जना, एक वैष्णों एक राँम।

वो है दाता मुकुति का, वो सुमिरावै नाँम।। 4।।

शब्दार्थ : दाता–देने वाला। मुकुति–मुक्ति।

व्याख्या : मेरा साथ देने वाले तो दो लोग हैं– एक वैष्णव और दूसरे राम। वैष्णव से मुझे राम–नाम के स्मरण का मन्त्र मिला और फिर राम के द्वारा मुझे मुक्ति प्राप्त हुई।

विशेष :

1. कबीर को नाम–स्मरण की प्रेरणा वैष्णवों से मिली, इस ओर संकेत है।
2. कबीर के मन में वैष्णव–साधुओं के प्रति अच्छा भाव था, यह उनकी अनेक कविताओं से ज्ञात होता है।

कबीर बन बन मैं फिरा, कारन अपने राँम।

राम सरीखे जन मिले। तिन सारे सब काम।। 5।।

शब्दार्थः सरीखे–समान। तिन–उन्होंने । सारे–बना दिये।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि मैं अपने राम के कारण वन–वन भटकता फिरा, परन्तु मुझे राम नहीं मिले। फिर मुझे राम के समान अर्थात आत्म–साक्षात्कार के द्वारा राम–रूप को प्राप्त हो गये लोग मिले और उन्होंने मेरे सारे काम बना दिये अर्थात् मुझे राम से मिला दिया।

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाँहि।

अंक भरे भरि भेंटिए, पाप सरीरौं जाँहि।। 6।।

शब्दार्थ : अंक–आलिंगन।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि मेरे लिये वही दिन सबसे अच्छा होता है जिस दिन मेरी किसी सन्त से भेंट होती है। सन्त से आलिंगन भरकर मिलने से मन–तो–मन, मेरे शरीर तक के पाप नष्ट हो जाते हैं।

कबीर चन्दन का बिड़ा, बेढ्या आक पलास।

आप सरीखे करि लिये, जे होते उन पास।। 7।।

शब्दार्थ : बिड़ा–वृक्ष। बेढ्या–घिरा हुआ।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि देखो, चन्दन का यह वृक्ष आक और पलास जैसे वृक्षों से घिरा हुआ है, फिर भी इस पर उनका प्रभाव नहीं पड़ा है। इसके विपरीत इसने अकेले होते हुए भी अपने आस–पास के पौधों को अपने समान बना लिया है अर्थात् उनमें अपनी सुगन्ध बसा दी हैं। कहने का भाव यह है कि सन्त चाहे किसी भी वातावरण में रहे, वह परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता, अपितु स्वयं परिस्थितियों पर अपना प्रभाव छोड़ता है और उन्हें अपने अनुसार ढाल लेता है।

कबीर खाई कोट की, पानी पिये न कोइ।

जाइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ।। 8।।

शब्दार्थ : कोट–किला। गंगोदिक–गंगाजल।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि किले की खाई में भरे पानी को कोई नहीं पीता। पर खाई का वही जल जब किसी नदी–नाले के साथ बहकर गंगा जी में जाकर मिल जाता है तो गंगाजल बनकर पवित्र हो जाता है।

विशेष :

1. **खाई कोट की–** पहले विशालकाय किलों के चारों ओर सुरक्षा की दृष्टि से चौड़ी और गहरी खाई खोद दी जाती थी जिससे कोई किले की दीवार पर चढ़कर किले के भीतर न आ सके। बरसात में उस खाई में पानी भर जाने से वह किसी नदी–नाले की तरह

लगने लगती थी।

जाँनि बूझि साँचहि तजै, करै झूठ सौ नेहु।

ताकी संगति राम जी, सुपिने हू जनि देहु।। 9।।

शब्दर्थ : नेहु–प्रेम। सुपिने–सपने। जनि–नहीं।

व्याख्या : हे राम जी! जो लोग जान–पूछकर सच्चाई को छोड़ते हैं तथा झूठ से प्रेम करते हैं, उनकी संगति मुझे सपने में भी नहीं देना।

विशेष :

1. भावसाम्य के लिये देखें कबीर की ही एक अन्य साखी–

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप।।

कबीर तासु मिलाइ, जासु हियाली तू बसै।

नहिं तर बेगि उठाय, नित का गंजन को सहै।। 10।।

शब्दार्थ : तासु–उससे। हियाली–हृदय में। तर–तो। गंजन–कष्ट।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि हे राम! मुझे तू उससे मिला दे जिसके ह्रदय में तू बसता है और नहीं तो मुझे शीघ्र ही इस दुनिया से उठा ले, क्योंकि यह रोज–रोज का तेरे वियोग का कष्ट अब कौन सहन करे?

.2.3 कबीरदास की भक्ति–भावना

कबीर की भक्ति पर विचार करने से पहले एक प्रश्न तो यही मन में उठता है कि क्या कबीर भक्त हैं? आधुनिक आलोचना ने निर्गुण–सगुण से जोड़कर भक्तिकालीन कवियों का जो वर्गीकरण किया है उसके अनुसार अब तुलसीदास भक्त हो गये हैं और कबीरदास सन्त। जबकि कबीर ने बार–बार अपने को भक्त कहा है। भले ही उनके पदों का आरम्भ 'सन्तों',

'साधो', 'साधू' आदि सम्बोधनों से होता है, परन्तु सच्चाई यह है कि इन शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपने सामने बैठे समाज के लिये किया है, अपने लिये सन्त या साधु कहने में संकोच ही किया है। दूसरी तरफ न केवल उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने को बार–बार भक्त कहा है, अपितु अपनी भक्ति–पद्धति को भी स्पष्ट किया है– 'भगति नारदी मगन सरीरा। इहि विधि भव तरि रहै कबीरा।' या 'जब लगि भाव भगति नहिं करिहौ। तब लगि भव सागर क्यों तरिहौ।'

स्पष्ट है कि कबीर भक्त तो हैं। अब प्रश्न यह है कि उनकी भक्ति का स्वरूप कैसा है? उनकी भक्ति–पद्धति की विशेषताएँ क्या–क्या हैं जो उन्हें औरो से अलग करती हैं?

कबीर ने अपनी भक्ति को नारदीया भक्ति बताया है और भाव–भक्ति का प्रबल समर्थन किया है। यह भाव क्या है? यह प्रेम का भाव है जो नारदीय भक्ति का आधार है– 'सा त्वस्सिन परम प्रेमस्वरूपाः।'... इसी प्रेम–भाव में आ. रामचन्द्र शुक्ल श्रद्धा को जोड़कर भक्ति की परिभाषा करते हैं– 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।' कबीर की भक्ति में हमें श्रद्धा की गहराई और प्रेम की तल्लीनता के दर्शन होते हैं। कबीर को ज्ञानमार्गी कहा जाता है, पर उनके यहाँ प्रेम का महत्व कुछ कम नहीं है। भक्ति में दोनों का समुचित समन्वय आवश्यक होता है। परमात्मा के महात्म्य का ज्ञान भक्त में उसके प्रति श्रद्धा–भावना बनाये रखता है और उसके प्रति प्रेम उससे जोड़ता है, उसके प्रति समर्पित करता है। प्रेम के साथ श्रद्धा के भी जुड़े होने से ही वह प्रेम सांसारिक प्रेम से विशिष्ट होकर 'भक्ति' में बदलता है।

कबीर की भक्ति की विशेषताओं पर बात करने से पहले उससे जुड़ी कुछ और बातें समझनी आवश्यक हैं। कबीर ने जिन बातों को आधार बनाकर अपनी भक्ति का स्वरूप तैयार किया, उनमें से बहुत सी बातें परम्परा से चली आ रही थीं। हाँ, उन्होंने उन बातों को स्वीकारा अवश्य अपने ढँग से। कबीर बहुश्रुत थे। साधु–सन्तों की संगत और पर्यटन से उन्होंने विपुल ज्ञान अर्जित किया था। अपने समय तक प्रचलित शास्त्रीय–अशास्त्रीय बहुत सी साधना–पद्धतियों का उन्हें ज्ञान था। उनसे सार–तत्त्व लेकर उन्होंने अपनी भक्ति का भवन निर्मित किया। इसलिये पूर्व प्रचलित सिद्ध–नाथ परम्परा, जैन मान्यताएँ, वैष्णव मत, महाराष्ट्र के वारकरी आदि पन्थों से लेकर अद्वैतवाद, इस्लाम के एकेश्वरवाद तथा सूफियों की प्रेम–पद्धति तक के अनेकानेक प्रभाव उनके काव्य में खोज–देखे जाते हैं। कबीर ने इन सबसे सार–सार को ग्रहण किया तो इनके निस्सार तत्त्वों की तीखी आलोचना भी की। कबीर की भक्ति–पद्धति की अन्य विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत रखकर देख–समझ सकते हैं–

निर्गुण राम की भक्ति

कबीर एकेश्वरवादी हैं, अर्थात् एक ईश्वर को मानने वाले हैं। उनके गुरू रामानन्द ने उन्हें राम नाम का मन्त्र दिया जिसे कबीर ने सगुण के बजाय निर्गुण रूप में स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा– दशरथ सुन तिहुँलोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।' तीनों लोकों में विख्यात् अयोध्या के राजा दशरथ के बेटे राजा राम से अलग अपने राम के जिस मर्म को उन्होंने समझा, वह कैसा है– 'जाके मुँह माया नहीं, नाहीं रूप–कुरूप। पुहुप वास से पातरा, ऐसो तत्त्व अनूप।' यह राम किसी मन्दिर में नहीं बैठा है, बल्कि सारे जगत में हर जगह, हर प्राणी के भीतर उपस्थित है। इसलिये कबीर कहते हैं– 'खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रहा समाई।' यह राम एक ही है, भले ही उसे अल्लाह या खुदा जैसे अलग–अलग नामों से पुकारा जाये। जब राम एक है और वह सब प्राणियों के भीतर है तो धर्म के आधार पर मानव जाति में बँटवारा भी उचित नहीं। इसलिये कबीर की मान्यता है– 'कहैं कबीर एक राम जपहु रे, हिन्दु तुरक न कोई।'

कबीर की भक्ति की यह एक और विशेषता है कि उन्होंने जिस निर्गुण ईश्वर को अपनी भक्ति का आधार बनाया है, उसे राम ही नहीं, गोंविन्द, माधो, हरि, ब्रह्मा आदि अनेकानेक नामों से भी पुकारा है। अभिप्राय यह कि कबीर को परमात्मा को किसी नाम से पुकारने से परहेज नहीं था, परन्तु उन्होंने उन नामों को अर्थ अपने ही दिये हैं। वे मानते हैं कि उस अपरम्पार ईश्वर के अनन्त नाम हो सकते हैं और सच्चे मन के साथ किसी भी नाम से दी गयी आवाज उस तक पहुँच सकती है– 'अपरम्पार का नाउँ अनन्त।'

ज्ञानमार्गी परम्परा

कबीर की भक्ति ज्ञानमार्गी है, इसका मतलब यह नहीं है कि उसमें प्रेम की महत्ता कम है। बिना प्रेम के तो भक्ति हो ही नहीं सकती। स्वयं कबीर ने कहा है– 'ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होइ।' पर, यह प्रेम मन में उत्पन्न कैसे हो? इसके लिये पहले जरूरी है ज्ञान। यह ज्ञान शास्त्रों में लिखा ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान गुरू के द्वारा दिया गया है। 'दिया गया है' का मतलब किसी वस्तु की तरह हाथ में पकड़ाया नहीं गया है, बल्कि हृदय में उसका अनुभव कराया गया है। यह ज्ञान जब हृदय में आता है तो आँधी की तरह सब कुछ पुराना नष्ट–भ्रष्ट कर नवीन अलौकिक आनन्द दे जाता है– 'सन्तों भाई आई ज्ञान की आँधी रे।' इस ज्ञान के आनन्द का एक बार अनुभव मिल जाने पर भक्त की सांसारिक आनन्द में कोई रुचि नहीं रह जाती– 'सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै। दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।' यह ज्ञान जन्म को जीवन को बनाता है, उसे सार्थक करता है, अमरत्व देता है; परन्तु विरले ही लोग इसे गुरू की कृपा से प्राप्त कर पाते हैं अन्यथा तो माया रूपी दीपक में पतंगे की भाँति फँसकर बार–बार अपने जीवन को नष्ट ही करते हैं– 'माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत। कहै कबीर गुरु ज्ञान तें एक आध उबरन्त।'

गुरू की महत्ता

कबीर की भक्ति–पद्धति में भक्त को भगवान के रास्ते पर ले जाने में गुरु की बड़ी भूमिका होती है। वही शिष्य के भीतर ज्ञानोदय में सहायक होता है, इसलिये इस पद्धति में गुरु का बहुत ऊँचा स्थान है। गुरु को यहाँ 'सदगुरु' या 'सतगुरु' कहा जाता है। यह कोई सामान्य ज्ञान देने वाला शिक्षक नहीं है, अपितु सत्य नाम परमात्मा का अनुभवजन्य ज्ञान–प्रदाता गुरु है, इसलिये से 'सत्गुरु' अर्थात् सत्य का ज्ञान कराने वाला यानि शरीर के भीतर ही परमात्मा का दर्शन कराने वाला गुरु कहा जाता है। इसलिये भक्त के जीवन में इसके उपकारों की कोई सीमा नहीं– 'सत्गुरु की महिमा अनत, अनत किया उपगार। लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावण हार।' भक्त इन उपकारों के बदले गुरु को कुछ देना भी चाहे तो उसे कोई ऐसी चीज दिखायी नहीं देती– 'राम नाम के पटतरे दैबे कौ कुछ नाहिं। का लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माहिं।' गुरु की महिमा तो कबीर के मन में इसी कारण से इतनी है कि वे ईश्वर की नाराजगी भी मोल लेकर गुरु की पहले वन्दना करना चाहेंगे–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काकै लागौ पाँय ।

बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

कबीर मानते हैं कि यदि हरि रूठ गया तो गुरु फिर उससे मिलवा देंगे, पर यदि गुरु रूठ गये तो हरि भी कुछ सहायता नहीं कर पायेंगे–

'कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय।

कहि कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय।'

पारम्परिक पूजा–पद्धतियों एवं आडम्बरों का निषेध

मन्दिर–मस्जिद–मठ आदि पूजा–स्थल शताब्दियों से लोगों की धर्म–भावना का केन्द्र रहे हैं जहाँ जाकर वे अपनी–अपनी आस्था के अनुसार उपासना करते हैं। इन धर्मस्थलों को लेकर एवं उनमें जाकर पूजा करने के सम्बन्ध में अनेक तरह के विधि–विधान एवं आचार–विचार बने हुए हैं। कबीर इन सबको नकारते हैं और भगवान एवं भक्त के सीधे सम्बन्ध को स्वीकारते हैं– 'तेरा साईं तुज्झ मैं, जाग सकै तौ जाग।' कबीर ने धर्मस्थलों तथा उनमें की जाने वाली पूजा–पद्धतियों को दो कारणों से विशेष तौर से नकारा है। एक तो यह कि इन धर्मस्थलों में सभी को जाने की छूट नहीं होती और दूसरे ये झगड़े का बड़ा कारण बनते हैं। कबीर के समय दो धर्म– हिन्दू और मुसलमान प्रमुख थे और इनमें आपस में कभी–कभी

अपने–अपने धर्मों को श्रेष्ठ मानने के कारण कलह भी हो जाया करती थी। कबीर ने दोनों धर्मों, उनसे जुड़े धर्मस्थलों और उनकी उपासना–पद्धतियों की तीखी निन्दा की है। वे मूर्ति पूजा के जितने विरोधी हैं, उतने ही अजान के। जहाँ वे हिन्दू को ऐसी बातें कहते हुए ललकारते हैं कि 'पाथर पूजे हरि मिलै तौ मैं पूजूँ पहार' तो वहीं मुसलमान को भी ऐसे वचनों के द्वारा लताड़ते हैं कि 'कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाइ। ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खदाइ।' इतना ही नहीं, वे तो जप, माला, छापा, तिलक, नमाज, रोजा, व्रत, तीर्थाटन आदि की भी भर्त्सना करते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर धर्मस्थलों में नहीं है, आडम्बरों से उसे प्रसन्न नहीं किया जा सकता। वह हर जगह है और अपने भीतर उसे सच्चे मन से खोजने पर पाया जा सकता है–

'मोको कहाँ ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास में।

न मन्दिर में न मस्जिद में न काबे कैलास में।

खोजी होय तौ तुरतै मिलिहौं पल भर की तालास में।'

सत्संग को महत्त्व

यों तो व्यक्ति–मात्र के जीवन में अच्छी–बुरी संगति का बड़ा प्रभाव पड़ता है, पर भक्ति के क्षेत्र में सत्संगति की वि"ौष महिमा बताई गयी है। सत्संग या सत्संगति का अर्थ है– सत्पुरुषों का संग। सत्पुरुष कौन? जो सत्य–स्वरूप उस परमात्मा का अपने हृदय में साक्षात्कार कर चुके हैं। ऐसे लोगों को साधु, सन्त, महात्मा आदि भी कहा जाता है। इन्हीं लोगों के संग अधिक–से–अधिक समय बिताना और उनकी ज्ञान–चर्चाओं का लाभ उठाना भक्ति के क्षेत्र में विशेष फलदायी होता है। कबीर भी भक्ति के विकास में सत्संग के महत् अवदान को स्वीकारते हैं, इसलिये बार–बार सत्संग करने पर जोर देते हैं– 'कबिरा संगति साधु की सहज करीजै सोइ।' कबीर स्पष्ट उल्लेख करते हें कि भक्ति के क्षेत्र में सफलता उन्हें सन्तों की संगति से ही मिली है–

कबीर बन बन मैं फिरा, कारन अपने राम।

राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम।।

आचरण की शुद्धता

कबीर की भक्ति–पद्धति में आचरण की शुद्धता पर बहुत बल दिया गया है। केवल शरीर को नहीं, मन को पवित्र बनाना इसमें आवश्यक है क्योंकि सच्चे और शुद्ध मन में ही

परमात्मा आकर निवास कर सकता है। इसलिये सत्य बोलना और झूठ से बचना उस परमात्मा को पाने की एक बड़ी शर्त है–

'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप।'

इसी तरह से अपने मन के अहं को निकालना अर्थात् अपने अभिमान को दूर करना भी ईश्वर से जुड़ने के लिये आवश्यक है। कबीर मानते हैं कि जब तक मन में अभिमान रहता है, तब तक वहाँ ईश्वर का आगमन नहीं होता और यदि एक बार मन में ईश्वर का प्रवेश हो गया तो फिर वहाँ अभिमान के लिये, अहं के लिये कोई जगह नहीं रहती–

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।

सब अँधियारा मिटि गया जब दीपक देखा माहिं।'

इसी तरह से हिंसा न करना, किसी का बुरा न चाहना, दूसरों का भला करना, निष्काम भाव से ईश्वर का नाम–स्मरण करना आदि मन को शुद्ध रखने के वे उपाय हैं जो भक्त को भगवान के समीप ले जाते हैं।

भक्ति के शास्त्रीय आधार और कबीर

यों तो कबीर शास्त्र को महत्त्व नहीं देते थे और पढ़े–लिखे न होने से शास्त्रों का विधिवत उन्होंने अध्ययन भी नहीं किया था, फिर भी उनके काव्य से जो तत्व निकलकर आते हैं, उनके आधार पर उनकी भक्ति का शास्त्रीय विवेचन भी किया जाता है। शास्त्रों में भक्ति के वैधी और रागानुगा नाम से दो भेद किये गये हैं। कबीर की भक्ति रागानुगा भक्ति है, जिसमें विधि–विधानों की नहीं, प्रेम तत्व की प्रधानता है। इसी प्रकार भक्ति के जो प्रकार दास्य, सख्य, माधुर्य, वात्सल्य आदि बताये गये हैं, कबीर के यहाँ वे सब भी कम या अधिक देखे जाते हैं, पर प्रमुखतः उनकी भक्ति दास्य और माधुर्य भावों से युक्त है। वे अपने को दास और परमात्मा को अपन स्वामी मानते हैं जिसका एकमात्र उद्दे''य स्वामी की इच्छानुसार चलना है। एक पद में वे कहते हैं– 'मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं। तन मन धन मेरा राम जी के नाईं।' इसी तरह से अपनी एक साखी में वे अपने को राम का कुत्ता कहते हैं जो अपने स्वामी राम के इशारे पर चलता है–

'कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउँ। गले राम की जेवरी जित खींचै तित जाउँ।।'

माधुर्य भाव से सम्बन्धित भी बड़ी सुन्दर उक्तियाँ कबीर ने अपने पदों में की हैं। कहीं वे राम को अपना पिउ (प्रिय) और अपने को राम की बहुरिया (पत्नी) कहते हैं तो कहीं अपने को ऐसी प्रेमिका के रूप में देखते हैं जिसकी आँखों में अपने प्रियतम की राह देखते–देखते झाइयाँ

पड़ गयी हैं और जीभ में प्रिय का नाम लेते–लेते छाले पड़ गये हैं। प्रेमी–प्रेमिका के रूप में परमात्मा और जीवात्मा के विरह–मिलन के अनेक माधुर्यमय चित्र उन्होंने अंकित किये हैं। एक पद में तो वे अपनी जीवात्मा और परमात्मा के अलौकिक विवाह–सम्बन्ध का पूरा रूपक रचते हैं–

दुलहिनि गावहु मंगलचार।

हम घर आये हो राजा राम भरतार।

भक्तिकालीन सगुण भक्ति–साधना में नवधा भक्ति को बड़ा महत्व दिया गया है। कृष्ण–भक्ति और राम–भक्ति दोनों काव्याधाराओं के कवियों ने नवधा भक्ति को अपनाया है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद–सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन– नवधा भक्ति के ये नौ प्रमुख सूत्र हैं। कबीर के यहाँ भी इनमें से अधिकतर कम या अधिक मात्रा में देखें जाते है। इस आधार पर भी उनकी भक्ति–पद्धति का विवेचन किया जाता है। यहाँ नवधा भक्ति के कुछ सूत्र कबीर की कविता से द्रष्टव्य हैं–

– निरगुन राम, निरगुन राम जपहु रे भाई। **–कीर्तन**

– कबीर सुमिरन सार है दूजा दुःख अपार। **–स्मरण**

– मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मोर।। **–आत्मनिवेदन**

कबीर को रामानन्द की शिष्य–परम्परा में माना जाता है। रामानन्द की भक्ति में प्रपत्तिमार्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कबीर के यहाँ प्रपत्तिमार्गी भक्ति के तत्त्व भी देखने को मिलते हैं। भगवान के प्रति अनन्य भाव से शरणागति ही इस भक्ति का मूल भाव है, जिसके क्रमशः छह चरण हैं– अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का परित्याग, भगवान के रक्षक रूप पर विश्वास, गौप्तृत्व–वर्णन, आत्मनिक्षेप तथा कार्पण्य। इनमें से कुछ के उदाहरण कबीर–काव्य से देखें–

कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउँ।

गले राम की जेवरी जित खींचै तित जाउँ।। **–अनुकूलता का संकल्प**

कबीर के काव्य में यौगिक क्रियाओं तथा उनसे सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का भी खूब वर्णन एवं प्रयोग देखने को मिलता है, जिससे पता चलता है कि उनकी भक्ति में योग–साधना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियाँ, सहस्रार चक्र, षट्दल कमल, नादविन्दु, अवधूत, ब्रह्मरन्ध्र जैसी हठयौगिक क्रियाओं और साधनाओं से सम्बन्धित प्रचुर

शब्दावली उनकी कविता में समायी है। योग–साधना से सम्बन्धित कबीर के एक पद की दो पंक्तियाँ यहाँ उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य हैं–

अवधू गगन मंडल घर कीजै।

अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनाल रस पीजै।

सर्वसुलभ भक्ति

कबीर की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सहज तो है ही, सबको और सब जगह सुलभ है। उसके लिये मन्दिर, मस्जिद, मठ, गुरुद्वारा, गिरिजाघर आदि किसी धर्मस्थल तक जाने की जरूरत नहीं। उसको आडम्बरों से नहीं, मन की सच्चाई से पाया जा सकता है। प्रेम इसको प्राप्त करने का सबसे बड़ा आधार है और ज्ञान इस प्रेम को उत्पन्न करने का माध्यम है। कबीर के बनाये भक्तिमार्ग में जाति–धर्म–धन–क्षेत्र आदि के आधार पर पैदा हुए भेदों का कोई स्थान नहीं और इस पर चलने वाले पथिकों के लिये अपने भीतर के अहं को मिटाकर रख देना आव"यक है। अमीर–गरीब, ऊँच–नीच सबके लिये वह समान रूप से सुलभ है। सभी इसके अधिकारी हैं। सामाजिक विषमता मिटाने में इस भक्ति मार्ग की बड़ी भूमिका है क्योंकि इस पर चलने वालों के लिये यह अनिवार्य नियम है– 'जाति–पाँति पूछै नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'

2.4 कबीरदास का सामाजिक पक्ष

हिन्दी का भक्तिकालीन साहित्य केवल मुनष्य और ईश्वर के बीच के सम्बन्ध को प्रगाढ़ बनाने वाला साहित्य नहीं है, अपितु वह मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्धों को सुधारने वाला साहित्य भी है। इस साहित्य ने जनजीवन में जो जागृति पैदा की, उसके कारण डॉ. रामविलास शर्मा ने तो इसे लोकजागरण का साहित्य कहा हैं। इस काल के भक्त कवियों की रचनाएँ लोगों को बेसुध नहीं बनातीं, बल्कि जगाती हैं। भक्ति–साहित्य के इस लोक–जागरण पक्ष को देखें या सामाजिक सरोकारों की बात करें तो चारो प्रमुख कवियों में से कबीर और तुलसी अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। अपने समय और समाज में जैसा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप इन दोनों कवियों का दिखायी देता है, वैसा दूसरों का नहीं। एक तरह से कहा जाये तो कविता इनका उद्देश्य नहीं थी, उद्देश्य समाज–सुधार था, लोकसुधार था, जनसुधार था– जिसके लिये इन्होंने कविता को साधन बनाया। परलौकिक जीवन जरूर इनके चिन्तन के केन्द्र में था, पर धरती के जीवन को भी उन्नत बनाने की चिन्ता उनके यहाँ है।

कबीर–काव्य के सामाजिक पक्ष पर बात करें, उससे पहले उनके समय के समाज की थोड़ी सी चर्चा कर लेना आवश्यक होगा। कबीर के समय के समाज की समस्या को हम दो

स्तरों पर समझ सकते हैं एक तो वैयक्तिक स्तर और दूसरा सामुदायिक स्तर। सामुदायिक स्तर पर यदि हम देखें तो समाज धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि दृष्टियों से अनेक खाचों में बँटा हुआ था। समाज में आर्थिक असमानता की गहरी खाई थी तो जातिगत विषमता की समस्या भी कोई छोटी समस्या नहीं थी। अनेक पन्थ–सम्प्रदाय अपने–अपने मतों के प्रचार द्वारा जनता को लुभाने की चेष्टा कर धार्मिक क्षेत्र में एक भ्रम का वातावरण बनाये हुए थे। ऐसे में एक बाहरी धर्म इस्लाम ने आकर इस धार्मिक प्रतिस्पर्धा को और भी बढ़ा दिया था। जिसके कारण समय–असमय समाज में टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। एक तरफ यह सामाजिक समस्या थी तो दूसरी ओर व्यक्ति–मात्र के आचरण में सुधार का बड़ा प्रश्न भी भक्त–कवियों के समक्ष उपस्थित था। कबीर ने व्यक्ति–चरित्र को बदलने और सुधारने से भी सम्बन्धित बड़े सन्देश अपने काव्य के माध्यम से दिये। आगे हम कबीर के इन्हीं प्रयासों को कुछ बिन्दुओं के अन्तर्गत समझने का प्रयास करेंगे।

हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल :

कबीर के समय में हिन्दू–मुस्लिम दो बड़े धर्म एक–दूसरे के प्रतिस्पर्धी थे। इनमें अपने–अपने धर्म की श्रेष्ठता के दावे को लेकर द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती रहती थी। कबीर ने दोनों धर्मों के अनुयायियों को फटकारा और उनको उनकी वास्तविकता का आईना दिखाते हुए आ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकाण्ड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने खरी–खरी सुनायी और राम–रहीम की एकता समझकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया। देशाचार और उपासना विधि के कारण मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 51)

अपनी पूजा–पद्धति को श्रेष्ठ मानना और दूसरे की पूजा–पद्धति में दोष ढूँढ़ना यह समुदायों में कलह का कारण बनता है। कबीर ने हिन्दू–मुस्लिम दोनों धर्मों की पूजा–पद्धतियों में खोट निकाला और उन्हें इस आधार पर आपस में न उलझने का सन्देश दिया। जहाँ उन्होंने 'दुनिया ऐसी बाबरी पाथर पूजन जाय। घर की चाकी कोई न पूजै जिसका पीसा खाय' जैसी बातें कहकर हिन्दुओं की आलोचना की, तो वहीं 'काँकर पाथर जोरि कर मस्जिद लई बनाय। ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय' जैसी अनेक तीखी उक्तियों के द्वारा मुसलमानों की निन्दा की। अपने एक पद में वे कहते हैं–

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।

बेस्या के पाइन–तर सोवै यह देखो हिन्दुआई।

मुसलमान के पीर–औलिया मुर्गा–मुर्गी खाई।

खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करैं सगाई।

इसी पद में आगे वे कहते हैं–

हिन्दुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।

कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई।

दोनों धर्मों की कमियों को समझकर कबीर ने जो रास्ता चुना, उस पर चलने को लोग तैयार नहीं थे– कबीर को दुख इस बात का था। दुख इस बात का था कि लोग सच पर नहीं, झूठ पर विश्वास करते हैं–

साधो, देखो जग बौराना।

साँची कहौ तौ मारन धावै झूठे जग पतियाना।

हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।

आपस में दोऊ लड़े मरत हैं मरम कोई नहिं जाना।

कबीर की दृष्टि में यह मर्म क्या था? मर्म था यह, कि राम और रहमान दोनों अलग–अलग नहीं हैं। दोनों एक हैं और उनको पाने–खोजने के लिये मन्दिर या मस्जिद में जाने की जरूरत नहीं है और न ही किसी साधना या क्रिया–कर्म की। वह तो सर्वत्र सुलभ है। इसलिये उनका ईश्वर तो कहता है कि वह तो हरेक के लिये हरेक स्थान पर उपलब्ध है, बस उसे कोई खोजने वाला हो–

मोको कहाँ ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।

ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।

ना तो कौने क्रिया–कर्म में, न ही योग बैराग में।

खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।

यह थी कबीर की समाज को बड़ी देन, जिसमें उन्होंने धर्म के आधार पर समाज में फैले झगड़े को ईश्वर की एकता का निदर्शन कराकर मिटाने का प्रयास किया। डॉ. बच्चन सिंह ने कबीर के इस अवदान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– "कबीर पहले व्यक्ति हैं

जिन्होंने विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, वर्णों को नकारकर ऐसे समाज की स्थापना का प्रयास किया जिसमें धर्म, सम्प्रदाय, ऊँच–नीच के भेदभाव के लिये कोई स्थान नहीं है। उनके समाज में न कोई हिन्दू है, न मुसलमान–सब मनुष्य हैं, कोई किसी से छोटा–बड़ा नहीं है।"

जाति–पाँति का विरोध :

भारत मे मनुष्य–मनुष्य में भेद करने का एक बड़ा कारक जाति रही है। इसके कारण कोई मनुष्य ऊँचा तो कोई नीचा समझा जाता है। जातिगत ऊँच–नीच के इस विचार में कुछ जातियाँ तो इतनी नीची समझी गयीं कि उनके साथ अस्पृश्यता का वर्ताव तक किया गया। कबीर स्वयं इस जाति–व्यवस्था में निचले पायदान पर आते थे। अतः उन्होंने स्वयं भी इसके दंश को महसूस किया था। लेकिन, वे इस कारण से कमजोर नहीं पड़े, अपितु उन्होंने इसका मुकाबला किया और पूरे स्वाभिमान के साथ इसे ललकारा। जाति और धर्म दोनों को लेकर जिन लोगों में श्रेष्ठता–बोध था, कबीर ने उन्हें चुनौती दी और बड़े तीखे शब्दों में इस ऊँच–नीच और छुआ–छूत के विचार की भर्त्सना की। हिन्दुओं में जाति की दृष्टि से सर्वोच्च आसन पर विराजमान जहाँ ब्राह्मण वर्ग को उन्होंने इन शब्दों में फटकारा कि 'जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया तौ आन वाट ह्वै क्यों न आया' (यदि तू ब्राह्मण–ब्राह्मणी से पैदा है तो किसी अन्य तरीके से क्यों नहीं जन्मा) तो वहीं इस्लाम के अनुयायियों को ललकारा–'जो तू तुरक तुरकिन जाया, तो अन्दर खतना क्यों न कराया।' (यदि तू मुसलमान से पैदा है तो पैदा होने से पहले ही खतना कराकर क्यों नहीं जन्मा)

कबीर ने मनुष्य–मनुष्य में भेद–दृष्टि की पोल खोलकर रख दी, फिर चाहे वह भेद जाति–धर्म ही नहीं, लिंग सम्बन्धी भी क्यों न हो। आत्मज्ञानी की दृष्टि में तो स्त्री–पुरुष का भेद भी निस्सार है। इसलिये कबीर कहते हैं–

ऐसा भेद विगूचन भारी।

बेद कितेव दीन अरु दुनिया कौन पुरुष कौन नारी।

एक बूँद एकै मलमूतर– एक चाम एक गूदा।

एक जोति से सब उत्पन्ना कौन वामन कौन सूदा।

जब सब एक ही तरीके से पैदा हुए हैं, सबका एक ही जैसा शरीर और उसकी गतिविधियाँ हैं, एक ही परमात्मा की ज्योति से सबक जीवन प्रकाशित है तो फिर स्त्री–पुरुष, ब्राह्मण–शूद्र जैसा भेद–भाव कैसा? इसलिये कबीर ने अपने भक्ति–पथ में सभी के लिये साथ चलना आसान कर दिया। जो भक्ति मार्ग पर आ गया, उसकी बस एक ही जात रह गयी–

भक्त की। उन्होंने भक्तों को यह एक मूलमन्त्र थमा दिया जो साधना की सफलता के लिये जितना आवश्यक है, मानवता के कल्याण के लिये भी उतना ही अपरिहार्य है–

'जाति–पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।'

जो सन्त बन गया, जिसको गुरु–कृपा मिल गयी, आत्म साक्षात्कार के रास्ते पर आगे बढ़ चला– उसकी जाति, कुल–खानदान सम्बन्धी समस्त पहचानें मिट गयीं– 'जाति–पाँति कुल सब मिटे नाम धरौगे कौन?' सन्तो की मण्डली में तो हर जाति, हर धर्म के लोग सम्मिलित रहते हैं पर उनकी एक ही पहचान रह जाती है– सन्त की। कबीर का एक पद इस सम्बन्ध में बड़ा महत्त्वपूर्ण है–

संतन जात न पूछो निरगुनियाँ।

साध ब्राह्मन साध छतरी, साधै जाती बनियाँ।

साधनमाँ छत्तीस कौम है, टेढ़ी तोर पुछनियाँ।

साधै नाऊ साधै धोबी, साधैं जाति है बरियाँ।

साधन माँ रैदास संत हैं, सुपच ऋषि सो भँगिया।

हिन्दु–तुर्क दुइ दीन बने हैं, कछू नहीं पहचनियाँ।

आचरण की शुद्धता पर जोर :

समाज व्यक्तियों से बनता है और स्पष्टतः कोई भी समाज अपने समूह के सदस्यों के अच्छे–बुरे होने से ही अच्छा–बुरा हो सकता है। भक्ति–साहित्य की यह एक बड़ी विशेषता रही कि इसने लोगों को ईश्वर से जोड़ने का तो प्रयास किया ही, लोगों को लोगों से जोड़ने की दृष्टि से भी बहुत कुछ दिया। कबीर के यहाँ मनुष्य के परमात्मा से मिलन की पहली शर्त थी कि वह स्वयं को इसके योग्य बनाये। योग्य बनने का मतलब था आचारण की शुद्धता द्वारा अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाना। इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति सच्चाई को जीवन में अपनाये, झूठ से बचे, अपने अहंकार को त्याग दे, मांसाहार छोड़ दे, जीवों पर दया करे, परोपकार में रत रहे, अपने अन्दर के लालच और लोभ को छोड़े आदि–आदि। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में लिखा है– "कबीर ने समाज में व्याप्त दुराचार, पाखण्ड, छल–कपट, अन्धविश्वास और जड़ रूढ़ियों का तीव्र विरोध किया। वैसा न तो उनसे पहले कोई कर सका था और न उसके बाद में।" (पृ. 50)

कबीर ने सीधे–सीधे लोगों को समझाया कि बुरा काम करके अच्छे परिणाम की आशा नहीं की जा सकती । अपनी एक साखी में वे कहते हैं– 'चोरी करै निहाई की, करै सुई का दान। ऊँचे चढ़ि के देखि ले केतिक दूर विमान।'

सन्त कोई की बन सकता है, पर हरि–भक्ति के बाद जो दूसरी बड़ी कसौटी सन्त बनने की है, वह है– परोपकार । दूसरों का बुरा न चाहना और सबके भले के लिये अपना जीवन समर्पित करना, यह सन्त होने का लक्षण है; जिसके लिये वे वृक्ष और नदी का उदाहरण देते हैं–

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।

परमारथ के कारने , साधुन धरा शरीर।।

सन्त की किसी से दोस्ती या दुश्मनी नहीं होती। वह निरपेक्ष भाव से सभी के कल्याण की कामना करता है। इसलिये कबीर उद्घोष करते हैं–

कबिरा खड़े बजार में, सबकी माँगत खैर।

ना काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।।

कितनी ही कविताएँ कबीर की ऐसी हैं जिनमें नैतिकता और सदाचार की सीख दी गयी है। कबीर मानते हैं कि यदि समाज में समरसता लानी है, उसे सुखी बनाना है तो दूसरों के नहीं, अपने दोष देखने की आदत डालनी होगी; जिनकी सीमा नहीं है–

दोष पराये देखकर, चला हसंत हसंत।

अपने चित्त न आवहीं, जिनका आदि न अंत।

दूसरे में अच्छाई नजर आने लगेगी, यदि हम अपनी बुराइयों को देखने लगें–

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिल्या कोइ।

जौ दिल खोजा आपना मुझसे बुरा न कोइ।।

इस प्रकार हम देखें तो कबीर–काव्य का समाजिक पक्ष काफी सशक्त है। उनके यहाँ ऐसा वैराग्यवादी विचार नहीं है कि व्यक्ति को ईश्वर को पाने के लिये सब कुछ छोड़–छाड़कर जंगल या पहाड़ के एकान्त में जाना पड़े। इसी दुनिया में, दुनिया के लोगों के बीच में रहते हुए और दुनियादारी निबाहते हुए भी भगवान को पाया जा सकता है। बस, शर्त यही है कि इसके लिये अपने को पात्र बनाया जाये और यह पात्रता सत्कर्मों से आती है, शुद्ध आचरण से

आती है, अन्तःकरण को पवित्र बनाने से आती है। सदाचार के पथ पर चलने से आत्मकल्याण तो होता ही है कि ईश्वर से मिलन का रास्ता खुलता है, भवकल्याण भी होता है क्योंकि समाज में समरसता और सदाशयता आती है। कबीर की बानियों का और उनकी बानियों से प्रेरित–प्रभावित होकर आगे के सन्तों द्वारा कही गयी बानियों का आम जनता पर अच्छा–खासा प्रभाव पड़ा है जो आज तक मौजूद है। यह कबीर की समाज को बहुत बड़ी देन है। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "...अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन सन्त महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है। उच्च विषयों का कुछ आभास देकर, आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्मगौरव का भाव उत्पन्न करके, इन्होंने इसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 46)

स्वयं को परखिए :

1. कबीरदास भक्तिकाल की किस काव्य धारा की किस शाखा के अन्तर्गत आते हैं ?

2. कबीरदास के गुरू का नाम क्या था ?

3. कबीर की मृत्यु कहाँ हुई ?

4. कबीर के शिष्य धर्मदास ने किस नाम से उनकी रचनाओं का संकलन तैयार किया ?

5. कबीर ने अपनी भक्ति को किस प्रकार की भक्ति बताया है ?

6. कबीर ने गुरू को अधिकतर क्या कहकर पुकारा है ?

7. कबीर के अनुसार ईश्वर को कहाँ पाया जा सकता है ?

8. कबीर ने अपने एक दोहे में सबसे बड़ा तप और सबसे बड़ा पाप किसे बताया है ?

9. कबीर की भक्ति 'वैधी है' या 'रागानुगा '?

10. 'प्रपत्तिमार्गी' भक्ति का मूल भाव क्या है ?

स्वयं को परखिए के उत्तर :

1. निर्गुण काव्य धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के 2. रामानन्द 3. मगहर में। 4. बीजक। 5. नारदी या भक्ति। 6. सतगुरू। 7. अपने भीतर । 8. सच और झूठ को 9. रागानुगा। 10. भगवान के प्रति अनन्य भाव से शरणगति।

2.5 परिचय

हिंदी साहित्य में पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। इस काल की समय सीमा संवत 1375 से 1700 तक स्वीकार की जाती है ।इस काल को हिंदी साहित्य के स्वर्ण काल के नाम से भी अभिहित किया जाता है ।इस अवधि में हिंदी साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा ।इसी काल में सूर, तुलसी ,मीरा ,कबीर ,जायसी जैसे महान भक्त कवि हुए ।भक्तिकालीन हिंदी कविता को उपासना की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

1 निर्गुण भक्ति साहित्य

2 सगुण भक्ति साहित्य

निर्गुण में ब्रह्म की अनुभूति को आधार मानकर आत्मविश्वास के बल पर निराकार और निर विशेष के प्रति आस्था प्रकट की जाती है ।सगुण भक्ति धारा में लीला अवतार को आराध्य मानकर भगवान के अनुग्रह के बल पर साकार और विशेष के प्रति श्रद्धा और भक्ति का भाव प्रकट किया जाता है।

2.6- सूरदास सामान्य परिचय

सूर के काव्य में उनके जीवनवृत्त के सूत्र स्पष्ट नहीं मिलते हैं ।अंतःसाक्ष्य और वाह्यसाक्ष्य के रूप में प्राप्त सामग्री के आधार पर सूरदास का जीवन वृत्त स्वीकार किया जाता है। नाभादास कृत भक्तमाल, गोकुलनाथ कृत चौरासी वैष्णवन की वार्ता आदि को आधार माना गया है। अंतः साक्ष्य के रूप में सूर के आत्मकथन जहां-तहां बिखरे हुए मिलते हैं । अधिकांश विद्वान प्राप्त साक्ष्य के आधार पर 1478 ई. में दिल्ली के निकट ब्रज क्षेत्र के 'सीही' गांव के सारस्वत ब्राह्मण परिवार में स्वीकार करते हैं। 1583 ई. में उनका देहावसान चंद्रसरोवर के समीप पारसोली गांव के आसपास हुआ। सूरदास की रचनाओं की प्रामाणिकता पर भी मतभेद है। 'सूरसारावली' 'साहित्य लहरी' और 'सूरसागर' को प्रामाणिक माना गया है।

2.8 सूर का वात्सल्य वर्णन –

सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है ।सूरदास ने कृष्ण के बाल सौंदर्य के साथ-साथ बाल मनोविज्ञान का जैसा सुंदर चित्रण किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है । सूरदास की बाल चेष्टाएँ, माता के हृदय की आशंकाएं बाल, वृत्तियों का निरूपण, मातृ हृदय की झांकी आदि का मर्मस्पर्शी एवं मनोहारी चित्रण किया है । उनकी इसी विशेषता को लक्ष्य करके आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं-"बाल सौंदर्य एवं स्वभाव के चित्रण में जितनी सफलता सूर को मिली है उतनी अन्य किसी को नहीं। अपनी बंद आंखों से वात्सल्य का कोना कोना झांक आए हैं।"सूर का वात्सल्य वर्णन अपनी स्वाभाविकता, रमणीयता और मार्मिकता के कारण ही इतना हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी बन पड़ा है । सूरदास ने यशोदा के जरिए मातृ हृदय का ऐसा स्वाभाविक और हृदय स्पर्शी चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है।वात्सल्य के दोनों रूपों संयोग और वियोग

सूर के काव्य में देखने को मिलता है । वात्सल्य के संयोग पक्ष के अंतर्गत जहां वह एक और कृष्ण के रूप माधुरी का चित्रण करते हैं वहीं दूसरी ओर उनकी बाल सुलभ चेष्टाओं का बहुत ही मनोहारी चित्र खींचा है-

" हरि जू बाल छवि कहौ बरनि।
एकल सुख की सीव कोटि मनोज शोभा हरनि।।"

वे घुटनों के बल चल रहे हैं और मुख पर दही का लेप किए हुए बहुत सुंदर लग रहे हैं ।
"सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरन चलत रेनु तन मण्डित मुख दधि लेप किए।।"

1. कृष्ण के बाल रूप की झांकी :-

बाल रूप में कृष्ण अत्यंत सुंदर लग रहे हैं । वह धूल से सने हुए घुटनों के बल चल रहे हैं और मीठी मीठी बोली बोल रहे हैं ।उनकी इस छवि पर माता यशोदा न्योछावर हो रही हैं ।

"हौ बलि जाऊं छबीले लाल की।
धूसरि धूरि घुटुरुवन रेगनि बोलन बचन रसाल की।।"
वे घुटनों के बल चल रहे हैं और मणि जड़ित नंद के आंगन में अपनी ही परछाई को देखकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं ।
"किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मणिमय कनक नंद के आंगन बिंब पकरिवे धावत।।"

2. बाल मनोवृत्तिओं का वर्णन -

सूरदास ने बालकों के हृदय के मनोभाव का चित्रण भी बड़े मनोयोग से किया है। बालकों की खीझ पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बुद्धि चातुर्य, भोले भाले तर्क आदि का बहुत ही स्वाभाविक चित्रण सूर के काव्य में देखने को मिलता है। कृष्ण चाहते हैं कि उनकी चोटी बलदाऊ से बड़ी हो जाए यही कारण है कि माता यशोदा जब उनसे दूध पीने के लिए कहती हैं कि इससे तुम्हारी चोटी बड़ी हो जाएगी तो वे उनकी बात सहज ही मान लेते हैं। और दूध पी लेते हैं, लेकिन चोटी तो जो कि त्यों है इस पर माता यशोदा से प्रश्न करते हैं-
"मैया कबहि बढ़ेगी चोटी ।
किती बार मोहि दूध पिबत भई यह अजहुँ है छोटी।"

3.बाल आक्रोश का चित्रण-

सूरदास कृष्ण के बाल आक्रोश का भी बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण करते हैं। बलदाऊ जब कृष्ण को यह कह कर चिढ़ाते हैं कि तू यशोदा माता का पुत्र नहीं है उन्होंने तुझे मोल का लिया है। जिस पर खींचकर कृष्ण माता यशोदा से अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति इन शब्दों में करते हैं -

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मौसो कहत मोल को लीन्हो तू जसुमति कब जायो।।"

4.मातृ हृदय की झांकी-

सूरदास मातृ हृदय का बड़ा ही सुंदर चित्रण करते हैं। माता यशोदा कृष्ण को सुलाने के लिए तरह तरह का यत्न करती हैं ।इसका बहुत ही सुंदर चित्रण सूरदास ने इन पंक्तियों में किया है -

"यशोदा हरि पालने झुलावे।
हलरावै दुलरावै मल्हावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आउ री निदिया काहे न आनि सुवावै।।"

सूरदास ने यशोदा के मातृ हृदय का जो स्वाभाविक और हृदय ग्राही चित्र अंकित किया है वह आश्चर्यजनक लगता है ।माता यशोदा यह अभिलाषा प्रकट करती हैं कि कब उनका लाल घुटनों के बल चलेगा -

"*कब मेरे लाल घुटुरुवन रेगें, कब धरनी पर द्वैक धरै।।"*

5-बाल लीलाओं का चित्रण –

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने गीतावली में बाल लीला को इनकी देखा देखी बहुत अधिक विस्तार दिया पर उसमें बाल सुलभ भावों और चेस्टओ कि वह प्रचुरता नहीं आई उसमें रूप वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल चेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कहीं नहीं। सूर के काव्य में बालकों के स्वाभाविक भावों की व्यंजना देखते ही बनती है। बालकों के क्षोभ का यह चित्रण कितना स्वाभाविक बन पड़ा है -

"खेलते में कु काको गोसैया ?
जाति पाति हम ते कछु नाही न बसत तुम्हारी छैयां ।।
अति अधिकार जनावत काहे अधिक तुम्हारे हैं कछु गैया।।"

बालक खेल खेल में जीत कर एक दूसरे को चिढ़ाते हैं क्योंकि खेल में तो कोई छोटा बड़ा नहीं होता-
" खेलन में को काकू गोसैया ।
हरी हारे जीते श्रीदामा बरबस की कत करत रिसैया।।"

इसी प्रसंग में सूरदास ने कृष्ण के माखन चुराने का वर्णन भी किया है। गोपी जब उनकी शिकायत लेकर माता यशोदा के पास आती है तो किस तरह वे अपनी सफाई माखन चुराने के संदर्भ में तर्क सहित देते हैं।

" मैया मैं नहीं माखन खायो ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिल बरबस मुख लपटायो।
बालक बहियांन को छोटी छिको केहीं विधि पायो।।"

सूरदास ने बाल हट का चित्रण भी बहुत ही स्वाभाविक रूप में किया है । कृष्ण माता यशोदा से चंद्र खिलौना लेने की हट करते हैं सूरदास ने कृष्ण के हट का चित्रण इन पंक्तियों में किया है

"मैया मैं तो चंद्र खिलौना लैहों।
जैहौ लोटी अबही धरनी पर तेरी गोद ना ऐहो।।"

सूरदास ने जितनी तन्मयता से वात्सल्य के संयुक्त पक्ष का चित्रण किया है उतनी ही तन्मयता के साथ वात्सल्य के वियोग पक्ष को भी चित्रित किया है ।माता यशोदा कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनकर कितनी बिकल होती हैं इसका चित्रण सूर ने निम्न पंक्तियों में किया है-

"यशोदा बार-बार यो भखै।
है कोई ब्रज में हितु मेरो चलत गोपाल ही राखै।"

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर यशोदा का मात्र हृदय विकल हो उठता है उन्हें लगता है कि जितना व कृष्ण को जानती हैं उनकी आदतों से परिचित हैं उतना कोई और नहीं यही कारण है कि वह देवकी के पास संदेश भिजवाती हुई कहती हैं-

"संदेसो देवकी सो कहियो ।
हौ तो धाय तुम्हारे सुत की कृपा करत ही रहीयो।
जदपि टेव तुम जानती हौ ताऊ मोहि कही आवै।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैत माखन रोटी भावै।।"

निष्कर्ष यह कहा जा सकता है कि सूरदास ने वात्सल्य का बड़ा ही हृदयस्पर्शी मार्मिक और स्वाभाविक वर्णन किया है। उन्होंने केवल बाल लीला का ही चित्रण नहीं किया बल्कि बालकों की मानसिक प्रवृत्तियों का भी चित्रण किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरदास के वात्सल्य वर्णन की प्रशंसा करते हुए लिखा है -आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियां सुर की जूठन सी जान पड़ती हैं ।अतः निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि सूरदास वात्सल्य रस के सम्राट हैं ।उनका वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है ।वात्सल्य वर्णन में उनका कोई और सानी नहीं है।" इस संदर्भ में डॉक्टर नगेंद्र लिखते हैं सूर के भाव चित्रण में वात्सल्य भाव को श्रेष्ठतम कहा जाता है बाल भाव और वात्सल्य से सने मात्र हृदय के प्रेम भावों के चित्रण में सुर अपना सानी नहीं रखते हैं बालक के विविध चेष्टा ओं और विनोद के क्रीड़ा स्थल मातृ हृदय की अभिलाषाओं उत्कंठाओं और भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते हैं।"

2.9 सूरदास की भक्ति भावना

सूरदास ने लीला शक्ति को अपनाते हुए कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया है। सूरदास ने अपने गुरु वल्लभाचार्य के कहने पर कृष्ण लीलाओं को अपने पद का विषय बनाया। सूरदास कृष्ण के प्रति 'सख्य'भाव की भक्ति पद्धति अपनाते हुए भी कृष्ण के प्रति यशोदा के वात्सल्य भाव तथा राधा एवं गोपियों की कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव की भी सुंदर अभिव्यक्ति अपने पदों में किया है। गोपी लीला के अंतर्गत कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम उनकी भक्ति भावना की पराकाष्ठा है। सूर की भक्ति का आधार पुष्टिमार्ग ही है जिसके अंतर्गत भगवान की कृपा ही उसका कल्याण कर उसे इस लोक से मुक्ति दिलाने में सफल होती है। वे कहते हैं-

"जा पर दीना नाथ ढारै।
सोई कुलीन बडो सुंदर सोई जा पर कृपा करै।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु ने ढरै।।"

नारद भक्ति सूत्र के अंतर्गत आसक्तियों के जो ग्यारह रूप बताए गए हैं उनमें से सूर का मन सख्यसक्ति, वत्सल्यसक्ति, रूपासक्ति, कांतसक्ति और तन्मयासक्ति में अधिक लगा है ।सूरदास कहते हैं कि कृष्ण गोपियों के हृदय में इस तरह से बस गए हैं कि अब वे किसी भी तरह से निकल ही नहीं सकते ।गोपियों की इसी तन्मयासक्ति का वर्णन सूरदास ने निम्न पंक्तियों में किया है-

"उर में माखन चोर गड़े ।
अब कैसेहूं निकसत नहीं उधौ तिरछै हौ जु अड़े।।"

सूरदास ने बिरहा शक्ति का वर्णन भ्रमरगीत के अंतर्गत किया है ।

भक्ति के दार्शनिक स्वरूपों में सूरदास ने वल्लभाचार्य के 'शुद्धाद्वैतवाद' को ही ग्रहण किया है। 'शुद्धाद्वैतवाद 'के अंतर्गत जीव को ब्रह्म का अंश मानते हुए उनका (जीव और ब्रह्म) अद्वैत संबंध स्वीकार करते हैं। जीव के दुरावस्था का कारण माया ही है, माया के कारण ही जीव ब्रह्म से दूर हो जाता है। यदि माया ना होती तो वह शुद्ध और अविकारी होता । माया के कारण ही जीव ब्रह्म से अलग होकर सांसारिक भवसागर में फंस जाता है, इसलिए सुर कृष्ण के इस माया से मुक्ति दिलाने का अनुरोध करते हैं-

माधव जी नेकु हटकौ गाय।

वल्लभाचार्य जगत और संसार में भेद करते हैं । वह जगत को सत्य और संसार को असत्य मानते हैं ।उनका मानना है कि जगत ईश्वर की इच्छा से निर्मित ईश्वर के ही सत अंश का विस्तार है जबकि संसार अविद्या के कारण उत्पन्न होता है और यह नश्वर है । शरीर, वैभव ,कंचन ,कामिनी आदि सभी भौतिक पदार्थ

संसार है जबकि सृष्टि का अनादि प्रवाह जगत। अतः जहां जगत ब्रह्म की शक्ति है वही संसार जीव के अविद्या का परिणाम है।

2- सगुण कृष्ण के उपासक—

सूरदास निर्गुण की अपेक्षा सगुण को अधिक महत्व देते हैं क्योंकि उनका मानना है कि निराकार ब्रह्म इंद्रियातीत है जिसकी अनुभूति तो हम कर सकते हैं लेकिन साक्षात रूप में उसकी अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती है ।यही कारण है कि वह उसे मन वाणी के लिए अगम अगोचर मानकर ईश्वर के सगुण रूप की वंदना करते हैं वह कहते हैं-

"अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै।।
मन बानी को अगम अगोचर ,निरा लंब मन चक्रत धावै।।
सब विधि अगम विचारहि तातै सूर सगुन लीला पद गावै।।"

3--विनय भावना-

सूरदास प्रारंभ में विनय के पद ही लिखते थे जिसके अंतर्गत भक्त भगवान की शरण में जाकर उनसे अपने जीवन के उद्धार के लिए प्रार्थना करता है ।विनायकी सभी भूमिकाओं को उनके काव्य में देखा जा सकता है वे कहते हैं

"अब कै राखी लेहु भगवान।
हौ अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया ,वारिधि साधे बान।।"

सूरदास जी कहते हैं जीवात्मा रूपी पक्षी संसार रूपी वृक्ष की साख पर बैठा हुआ है जिस पर नीचे से शिकारी बाण का संधान कर रहा है और ऊपर बाज मडरा रहा है। इन दोनों माया और काल के चक्र में फसकर जीवात्मा रूपी पक्षी फड़फड़ा रहा है ।अब ईश्वर की कृपा ही जीवात्मा को बचा सकती है

4- सखा भाव की भक्ति-

सूरदास की भक्ति दास्य भाव की ना होकर सखा भाव की है। वह कृष्ण को सखा मानकर उनसे तर्क-वितर्क भी करते हैं और उन्हें उलाहना भी देते हैं।

" आजु हौ एक-एक करि टेरिहौ।
कै तुमही के हमही माधौ अपने भरोसे लरिहौ।।"

5- आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति-

सूर के काव्य में आत्म निवेदन की प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है। वह स्वयं को पतित मानते हुए कहते हैं-

"प्रभु हौ सब पतितन कौ टीको"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सूर की भक्ति भावना में पुष्टिमार्गीय प्रेम लक्षणा भक्ति भावना की प्रधानता है।सूरदास ने सख्य भाव की भक्ति अपनाते हुए भी वात्सल्य एवं दांपत्य भाव की सुंदर अभिव्यंजना अपने पदों में की है। वह उच्च कोटि के भक्त और हिंदी भक्त कवियों में उच्च स्थान के अधिकारी हैं। वे यह मानते हैं कि ईश्वर की कृपा के बिना भक्तों का कल्याण संभव नहीं है। उन्होंने रूपासक्ति,लीलासक्ति, स्वरूपासक्ति में से प्रमुख रूप से लीला शक्ति को ही अपनाया है यही कारण है कि उनके पद 'लीला पद' कहे जाते हैं।

इकाई : 3 कविता 1

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 इकाई के उद्देश्य

3.2 मीराबाई : सामान्य परिचय

3.2.1 मीराबाई : पाठ्यांश

3.2.1 मीरा की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना

3.3 बिहारी : सामान्य परिचय

3.3.1 बिहारी पाठयांश

3.3.2 बिहारी की काव्यगत विशेषता

3.4 सारांश

3.5 मुख्य शब्दावली

3.6 'अपनी प्रगति जाँचिए' के उत्तर

3.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

यह इकाई आपको भक्तिकाल की मीरा व बिहारी से परिचय करवाएगी। इन दोनों को एक ही स्थान पर लाकर कर अध्ययन करने का लाभ ये होगा कि आप दो विभिन्न कालों जो कि एक दूसरे के विरोध समझे जाते हैं आप इनके बीच के समानता और विरोधों को एक ही स्थान पर देख पायेंगे। भक्तिकाल वो समय है जिसके केंद्र में केवल भक्ति था वहीं रीतिकाल के मुख्य केंद्र में 'शृंगार'। इस इकाई के सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात आप एक ऐसे तत्त्व को ढूँढ़ पाएंगे जिसने दोनों विरोधी मतों को एक धागे में बांध दिया है। आपको कई स्थानों पर महसूस होगा कि ये दोनों कलमकार दो विरोधी युगों के होते हुए भी कुछ ऐसे तत्वों को थामे हुए हैं जो इन्हें एक बना देती है। इस तत्त्व की चर्चा हम अध्याय के अंतिम छोर पर मौजूद 'सारांश' में करेंगे।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई अध्ययन के उपरांत आप-

*बिहारी और मीराबाई के जीवन और उनके साहित्य से परिचित हो पायेंगे;

*मीराबाई की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना को जान पायेंगे;

*मीरा बाई की काव्य विशेषताओं से अवगत हो पाएँगे;

*बिहारी के भक्ति संबंधित ज्ञान से अवगत हो पाएँगे;

*मीराबाई और बिहारी के साहित्यिक लेखन के विषय में तुलनात्मक दृष्टि विकसित कर पाएंगे।

3.2 मीराबाई : सामान्य परिचय

भक्तिकाल में भक्ति की दो विभिन्न धारा चली। एक निर्गुण भक्ति और दूसरी सगुण। बात सगुण भक्ति की करें तो ये स्वयं में भी दो धाराओं को लेकर चलती है। एक के भक्ति का केंद्र लोक रक्षक 'राम हैं' तो दूसरे के लोक रंजक 'कृष्ण'। मीरा का संबंध इसी लोक रंजक 'कृष्ण' की भक्ति से है। मीरा के साहित्य के विषय में जानने से पूर्व यह जानना अति आवश्यक है कि वह कौन से कारक हैं जिनके द्वारा मीरा उस स्थिति तक पहुँची जहाँ वो कृष्ण प्रेम में डूब कर गीतों एवं पदावलियों को उकेरने लगीं।

विद्वानों ने मीरा का जन्म जोधपुर राज्य के अंतर्गत मेड़ता के 'कुड़की' नामक गाँव मे 1504 ईसवीं को माना है। इनकी माता का नाम वीर कुवरी एवं पिता का नाम राव रत्न सिंह हैं। बहुत ही छोटी आयु में इन्होंने अपनी माँ को खो दिया था। माँ के मृत्यु के पश्चात पालन पोषण की ज़िम्मेदारी इनके दादाजी राव दूदा जी ने उठाया। मीरा के व्यक्तित्व निर्माण में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा है। इनकी प्राथमिक शिक्षा हेतु राव दूदा जी ने घर पर ही गुरु की व्यवस्था की थी। इनका नाम ब्राह्मण गजाधर था। कृष्ण का प्रथम परिचय यहीं से उन्हें मिला। मीरा का विवाह केवल 12 वर्ष की आयु में चितौड़ के राजा राणा सांगा के पुत्र कुँवर भोजराज के साथ हुआ था। दुर्भाग्यवश विवाह के सात-आठ वर्ष बाद ही मीरा पर वैधव्य कै दु:ख का पहाड़ टूट पड़ा। वैसे तो मीरा बाल्यकाल से ही कृष्णा भक्ति में लीन रहती थी पर पति की मृत्यु के बाद मीरा ने अपना सारा जीवन कृष्ण- भक्ति में ही लगा दिया। वे साधु-संतों के सत्संग में रहने लगीं। शीघ्र ही उनकी चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। राजघराने की एक रानी का साधु - संतो से मिलना-जुलना और कीर्तन करना उनके परिवार वालों को अच्छा नहीं लगा। उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। अंत में तंग आकर मीरा न मेवाड़ छोड़ दिया और मथुरा-वृंदावन की यात्रा करते हुए द्वारिका जा पहुँची। वहाँ वे अपने आराध्य की आराधना में लीन हो गई। आराधना के तौर पर वह एक के बाद एक कई गीतों का निर्माण की। झूमती-गाती मीरा ने एक ऐसा साहित्य रच डाला जिसे आज भी महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। वैसे तो मीरा ने मुख्यत: स्फुट पदों की ही रचना की है। ये पद 'मीराबाई की पदावली' नाम से संकलित हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कुछ अन्य भी रचनाएँ मानी जाती हैं, वे हैं- नरसी जी का मोहरो या मायरा, गीत गोविंद की टीका, राग गोविंद, सोरठा के पद, मीराँ बाई का मलार, मीरा की गरबी और रुक्मिणी मंगल। स्त्री का यूँ सीधे तौर पर साहित्य के क्षेत्र में आना यह मीराबाई की साहसिक पहल थी।

3.2.1 मीराबाई : पाठ्यांश

1.नैणा लोभी रे बहुरि सके नहिं आइ ।

रूँम रूँम नखसिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाइ ।

मैं ठाढ़ी ग्रिह आपणेरी, मोहन निकसे आई।

बदन चंद परकासत हेली, मंद मंद मुसकाइ।

लोक कुटंबी बरजि बरजहीं, बतियाँ कहत बनाइ ।

चंचल निपट अटक नहिं मानत, परहथ गये बिकाइ ।

भली कहौ कोइ बुरी कहौ मैं, सब लई सीसि चढ़ाइ ।

मीराँ कहे प्रभु गिरधर के बिनि, पल भरि रहौ न जाइ ।

शब्दार्थ : नैणा = नयन, आँख। बहुरि = बहुत। रूम रूम = रोम-रोम । नखशिख = पैर के नाखून से लेकर सिर तक। ललकि रहना = पाने की ललक होना। ठाढ़ी = खड़ी रहना। ग्रिह = घर पर खड़ी रहना। हेलि = सखी। परहथ = पराये हाथ।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में मीरा कृष्ण के रूप सौंदर्य पर लोभित हो जाने का वर्णन कर रही हैं।

व्याख्या: उपर्युक्त पद में मीरा कृष्ण की प्रेम में व्याकुल अपने नेत्रों की दशा का वर्णन करते हुए कह रही हैं कि मेरे नेत्र बहुत लोभी हो गए हैं यह एक बार जो कृष्ण की मधुर मूरत को निहारने के लिए उस तरफ चले जाते हैं तो फिर लौट कर वापस ही नहीं आ पाते। यह अपने रोम-रोम से कृष्ण के पैर के नाखूनों से लेकर उनके शिख को देखते रहते हैं और उनको पाने की ललक से अधीर हो उठते हैं। अर्थात कृष्ण को एक बार देख लेने के बाद मेरा मन उनको प्राप्त कर लेने के

लिए बेचैन जाता हैं। मीरा कहती है कि मैं तो अपने घर के आगे खड़ी थी और उधर से मोहन जा रहे थे उनका मुख चंद्रमा के समान चमक रहा था और वह मंद मंद मुस्कुरा रहे थे उनके चेहरे के सौंदर्य को देखकर मेरी आंखें उनके रूप पर मोहित होने के उपरांत उन्हीं से जाकर लग गई। अब मेरी आंखें उनके चेहरे से हटती ही नहीं। मेरा समाज और मेरे परिवार के लोग चिल्ला चिल्ला कर मुझे ऐसा नहीं करने के लिए रोक रहे थे। उन्होंने मुझे प्यार से भी समझाने की कोशिश की परंतु मेरी यह चंचल आंखें किसी भी तरह का बंधन मानने को तैयार ही नहीं थी क्योंकि यह तो किसी पराए के हाथों बिक गई थी। अर्थात कृष्ण को देखते ही मेरा अपना दिल उन्हें दे बैठा है। अब वह किसी की धमकियां या फिर सलाह मानने को तैयार नहीं। अतः अंत में मीरा कहती हैं कि कोई मुझे भला कहें या बुरा मैंने कृष्ण के प्रेम में अपना शीश चढ़ा दिया है अर्थात अपने आप को कुर्बान कर दिया है। गिरिधर (कृष्ण) के बिना मीरा को एक पल भी रहा नहीं जाता।

2. मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।

गिरधर म्हांरो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥

रैण पड़ै तबही उठ जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।

रैणदिना बाके संग खेलूं, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ

जो पहिरावै सोई पहिरूं जो दे सोई खाऊँ।

मेरी उणकी प्रीति पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ।

जहाँ बैठावै तितही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊँ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर,बार बार बलि जाऊं॥

शब्दार्थ : म्हांरो =मेरा। सांचों = सच्चा। रैण = रात। बाके =उसके। ज्यूँ त्यूँ = जिस किसी भी प्रकार से क्यों ना हो। वाही = उसको। तितही = वहीं । रहाऊँ= रह सकती हूं। बलि = कुर्बान होना।

प्रसंग : मीरा ने इस पद में कृष्ण के प्रति अपने एकाग्र समर्पण का वर्णन किया है।

व्याख्या : मीरा कहती है कि मैं तो अब गिरिधर के घर जाऊंगी। गिरिधर ही मेरा सच्चा प्रियतम है ,जिसके रूप को देखते ही मैं उस पर लोभित हो जाती हूं। रात होते ही मैं उसके पास चली जाती हूं और भोर होते ही फिर उसके पास पहुंच जाती हूं। इस प्रकार रात दिन मैं उसके साथ ही आनंद मनाती रहती हूं। हर प्रकार से उसको (कृष्ण को) अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास करती हूँ। मैं उसके प्रेम में उसकी गुलाम हो गई हूँ। वह अब मुझे जो भी पहनावेगा उसी को पहनूंगी और जो भी देगा उसी को खाऊंगी। मेरी और उसकी प्रीति बहुत ही पुरानी है। उसके बिना एक पल भी रहना कठिन है। मेरा प्रियतम मुझे जहां भी बैठा देगा वही मैं बैठ जाउंगी और यदि वह मुझे बेचना भी चाहे तो मैं हंसी-खुशी बिक जाने को तैयार हूँ। अंत में मीरा कहती है कि मेरे तो देवता गिरिधर नागर ही है। मैं उनके ऊपर बार-बार कुर्बान हो जाना चाहती हूँ।

3. मैं तो म्हारां रमैयाने देखबो करूँरी।

तेरे ही उमरण, तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यानु धरूँरी।

जहाँ जहाँ पाँव धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँरी।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरणा लिपट परूँरी।

शब्दार्थ : रमैयाने = प्रियतम राम को। धरणी = पृथ्वी। निरत = कीर्तन में नृत्य करना।

प्रसंग : मीरा ने यहाँ रात दिन प्रभु को स्मरण करने वाली अपनी मनोदशा का वर्णन किया है।

व्याख्या : मीरा कहती हैं कि मैं तो अपने प्रियतम को रात- दिन देखना चाहती हूँ। हे कृष्ण मैं मैं तो सदैव तुम्हारा ही स्मरण, तुम्हारा ही सुमिरन और तुम्हारा ही ध्यान करती रहती हूँ। इस पृथ्वी पर चलते हुए जहाँ जहाँ मेरे पांव पड़ते हैं वहाँ वहाँ तुम्हारा कीर्तन करते हुए नृत्य करूँगी। मीरा यहाँ आजपाजप की बात करती हैं जिसमें साधक साँस के हर आवागमन के साथ भगवान को याद करता है। अंत में मीरा कहती हैं कि मेरे तो प्रभु गिरिधर नागर है, मैं तो उनके चरणों में ही लिपटकर पड़ी रहूँगी।

4.नहिं भावै थांरो देसड़लो जी रंगरूड़ो।

थांरा देसा में राणा साध नहीं छै, लोग बसे सब कूड़ों।

गहणा गांठी राणा हम सब त्यागा, त्याग्यो कररो चूड़ों।

काजल टीकी हम सब त्याग्या, त्याग्यो है बांधन जूड़ों

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो छै पूरों।

शब्दार्थ : भावै = अच्छा लगता है। थारों = आपका। देशलड़ों = देश। रंगरूड़ो = विचित्र, सुंदर। राणा = मीरा के देवर। कररो = हाथ की। चूड़ो = हाथी दांत की चूड़ियाँ। टीकी = बिंदी। जूडों = वेणी।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में मीरा अपने देवर राणा को संबोधित करते हुए कहती है कि तुम्हारा देश बुरा है और इसमें रहने वाले लोग कूड़ा हैं। ऐसा वह इसलिए कहती हैं कि राणा के लोगों ने मीरा को जान से मारने की कोशिश की थी। वजह ये थी कि वह उसकी मर्यादा की परवाह न करते हुए कृष्ण की भक्ति के लिए राज महल के बाहर चली जाती थी।

व्याख्या : मीरा और राणा को संबोधित करते हुए कहती हैं कि तुम्हारा यह विचित्र देश मुझे नहीं भाता है। राणा तुम्हारे देश में साधु या सज्जन लोगों का वास नहीं है यहाँ तो सब कूड़ा और बेकार मनुष्यों का निवास है। राणा मैंने सभी प्रकार के आभूषणों का त्याग कर दिया है। अपने हाथों से चूड़िया भी निकाल फेंकी हैं काजल और टीका का भी मैंने त्याग कर दिया है और अब

मैं अपने बालों का जुड़ा भी नहीं बनाती तात्पर्य है कि मैंने तो विवाहित स्त्री के सारे चिन्हों को निकाल फेंका है फिर भी तुम्हारे लोग मेरे पीछे पड़े हैं। मैंने इस संसार में विवाहिता स्त्री के लिए किए जाने वाले सारे सिंगार को इसलिए त्याग दिया है क्योंकि मुझे तो कृष्ण जैसा वर मिल गया है जो संपूर्ण है। मनुष्यों में तो तमाम दोष है लेकिन मेरे गिरधर नागर में किसी भी तरह के दोष की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

3.2.2 मीरा की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना

मीरा एक भक्तिन के रूप में उभर कर सामने आती हैं जो श्री कृष्ण के प्रेम में डूबी हुई है परंतु इस व्यक्तित्व का एक अन्य पक्ष भी है जो उनके जीवन के अनुभवों से जुड़ा हुआ है। जीवन में उन्होंने जिन संघर्षों को सहन किया, जिन परिस्थितियों से वह गुजरी उसका प्रभाव उनके साहित्य पर, उनके पदों पर दिखाई पड़ता है। अपने जीवन मैं जिन यातनाओं और कष्टों को उन्हें सहन करना पड़ा उनसे कभी हार नहीं मानी अपितु उससे लड़ जाने का साहस इनमें खूब था। आज आधुनिक युग में जब स्त्रियों की स्वतंत्रता के सामने इतनी चुनौतियाँ आ जाती हैं तो आज से पहले मध्यकालीन समाज में स्त्रियों की क्या स्थिति रही होगी इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।उस समय नारी परवश थी। उसकी कोई अपनी अस्मिता नहीं थी ऐसे समय में मीरा जो कि राजघरानों से संबंध रखती थी उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ।अपने विरोधों का किस तरह उन्होंने सामना किया यह सब हम उनके काव्य में देख सकते हैं। उनके काव्य में विद्रोह का स्वर कुछ यूँ दिखाई पड़ता है-

सामंती समाज के बंधनों के प्रति विद्रोह-

सामंती व्यवस्था में नारी की असहाय दशा तथा परवशता का रूप मीरा के काव्य में मिलता है उस समय की सामंती व्यवस्था स्त्री को असहाय बना देती थी। मीरा भी सामंती परिवार की थी ताल्लुक रखती थी। विवाह के कुछ समय बाद ही उन्हें वैधव्य जीवन व्यतीत करना पड़ा। सामंती समाज में हम देखते हैं कि नारी के पांव परतंत्रता की बेड़ियों में पूरी तरह जकड़े हुए थे। स्त्री सदैव परवश रही क्योंकि बचपन में पिता के, विवाह के पश्चात पति के और फिर संतान के अधीन रहती थी। मीरा ने उन सभी बंधनो को तोड़ा और कृष्ण की प्रेम में मतवाली होकर राणा के महल से बाहर निकल गई मीरा के पदों में राणा शब्द का प्रयोग बार

बार हुआ है और उनमें उसकी सत्ता को चुनौती दी गई है इन पदों का तेवर बहुत अधिक आक्रामक है अपने एक पद में वे कहती हैं कि सिसोदिया राजपूत रूठ कर मेरा क्या कर लेगा। राणा यदि रूठ भी गया तो अधिक से अधिक मुझे अपने देश से निकाल देगा लेकिन यदि हरी रूठ जाएंगे तो मैं कुम्हला जाऊँगी-

" सिसोद्यो रूठयौ तौ म्हारौ काई कर लेसी।

म्हे तो गुण गोविन्द रां गास्या हो माई।

राणोजी रूठया वारो देस रखासी।

हरि रूठया कुम्हलास्या हो माई। "

यहाँ मीरा का विद्रोह स्वर नजर आता है। उन्हें भक्ति के मार्ग में कोई बाधा स्वीकार नहीं है। अगर उनके ससुराल का वंश रूठता है तो रूठे उन्हें कोई परवाह नहीं है पर उनके हरि नहीं रूठने चाहिए।

***लोक रूढ़ियों का विरोध**

मध्यकाल में कई प्रकार की लोक रूढ़ियां और कुरीतियां फैल हुई थी। ऐसे में पर्दा प्रथा, सती प्रथा इस प्रकार की कई रूढ़ियां स्त्री जीवन को और भी कठिन बना रहीं थी। बात पर्दा प्रथा की करें तो स्त्री के व्यक्तित्व और अस्तित्व दलन का सर्वाधिक मूर्त और मजबूत हथियार पर्दा की प्रथा रही है। भारतीय नारी का सारा जीवन पर्दे के पीछे ही गुजर जाता रहा है। वह कभी जीवन और समाज का प्रत्यक्ष अनुभव कर ही नहीं पाती। प्राचीन समय से ही पर्दा प्रथा को सभी धर्मो ने ईश्वरीय विधान और औरत की मर्यादा के साथ जोड़ दिया था। जिसकी वजह से इस पर सवाल करना सांस्कृतिक संकट की तरह देखा जाता था। स्त्री होने के नाते मीरा पर्दा प्रथा के क्रूरता और उसके निर्मिति के तर्कों के खोखलेपन को बेहतर तरीके से समझ रही थीं। उनके जीवन में तो इस प्रथा के कारण कृष्ण की भक्ति के मार्ग में भी बाधा पैदा की गई। मीरा का देवर राणा सामाजिक लोक लाज का भय दिखाकर उन्हें संतो के साथ बैठकर कृष्ण की भक्ति करने से रोक रहा था इसलिए मीरा ने अपनी कविताओं में इस प्रकार का खुला विरोध किया है। वह लिखती हैं-

लोकलाज कुल काण जगत की, दई बहाय जस पाणी

अपणे घर को परदा कर लौ, मैं अबला बौराणी।

सती प्रथा प्राचीन काल से भारतीय समाज में चली आ रही एक क्रूर प्रथा थी। इसके तहत पति की मृत्यु के पश्चात उसकी पत्नी भी उसकी चिता में जिंदा जल मरती थी। यह पत्नी का अपने पति के प्रति प्रेम और समर्पण का चरम बलिदान माना जाता था। यह स्त्री की पवित्रता से भी जुड़ा हुआ था। मध्यकाल में यह प्रथा काफी प्रचलन में थी मुसलमानों के साथ युद्ध में यदि कोई राजा मर जाता तो उसकी अनेक पत्नियां अपने पति की चिता में जल मरती थी। इस प्रथा का विभत्स स्वरूप जौहर की प्रथा थी जिसमें मुसलमानों के अधीन हो जाने पर किसी राज्य की स्त्रियां अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए अग्नि कुंड में कूदकर सामूहिक रूप से आत्महत्या करती थी मीरा ने इसको देखा था और भोगी भी थी। पति की मृत्यु पर उनसे भी सती हो जाने के लिए कहा गया था लेकिन उन्होंने यह कहते हुए इनकार कर दिया था कि "गिरधर गास्यां सती न होस्यां, मन मोह्यो धननामी"

मीरा की इस प्रकार की घोषणा और उनका जीवन इस प्रकार की प्रथाओं के विरोध मैं खड़ा है। उन्होंने उन तमाम पक्षों का विरोध किया जो उनके और कृष्ण के प्रेम-भक्ति में बाधक बन जाता।

3.4 बिहारीः सामान्य परिचय

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण कवि है। बिहारी का जन्म 1595 ई. में ग्वालियर में और मृत्यु सन् 1663 में हुई थी। बिहारी की प्रसिद्ध का आधार उनका एकमात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है। जिसकी रचना सन् 1662 में की गई थी। बिहारी ने रीतिकाल के आचार्य कवियों की तरह लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे किन्तु उनके सतसई को देख कर कहा जा सकता है कि उन्हें रीतिशास्त्र और काव्य निरूपण के वैशिष्ट्य का खूब ज्ञान था।

बिहारी जयपुर के राजा जससिंह के दरबारी कवि थे। एक मान्यता है कि जब बिहारी जयपुर पहुँचे तब राजा जयसिंह अपनी सद्यः विवाहिता छोटी रानी के रूप और प्रेम में इतने खोये हुए थे कि राजकाज की ओर उनका ध्यान ही नहीं था। राज्यव्यवस्था अस्त व्यस्त हो चुकी थी। अराजकता लगातार बढ़ती जा रही थी। पर राजा इन सबको भुला कर महल के भीतर रास-रंग में डूबे हुए थे। ऐसे में बिहारी ने राज्य और प्रजा का ख्याल कर राजा के पास एक दोहा लिखकर भिजवाया-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सौं विध्यौ आगे कौन हवाल।।

ऐसी मान्यता है कि राजा ने दोहे का अर्थ समझ लिया था। वे अपने रास-रंग से बाहर निकल आये। अपने राज्य और अपनी प्रजा के प्रति महत्तम दायित्व था। इस घटना के बाद राजा जयसिंह के दरबार में बिहारी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। दरबार में रहते हुए ही बिहारी ने राजा के निर्देश पर विभिन्न दोहों के रूप में 'बिहारी सतसई' की रचना की थी। 'बिहारी सतसई' में कुल मिलाकर 713 दोहे हैं। इस ग्रन्थ की प्रेरणा बिहारी को 'गाथा सतसई', 'अमरुक शतक' और 'आर्या सप्तशती' जैसे ग्रन्थों से मिली थी। 'बिहारी सतसई' श्रृंगार रस का एक श्रेष्ठ मुक्तक काव्य है। बिहारी का एक-एक दोहा भाव, रस, विचार, भक्ति, नीति और भाषा की दृष्टि से अत्यधिक मूल्यवान है। इसीलिए उनके दोहों की प्रशंसा में कहा जाता है कि-

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक वे तीर।

देखन में छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर।।

3.5 बिहारी की काव्यगत विशेषताएँ

बिहारी रीतिकाल के सर्वप्रिय कवि होने के साथ-साथ प्रतिनिधि कवि भी हैं। बिहारी की यह लोकप्रियता और काव्यगत प्रतिनिधित्व उनकी काव्यगत क्षमताओं और उनकी विशिष्ट प्रतिभा के कारण है। बिहारी का एक मात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है, जिस पर अब तक लगभग पचास से अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

बिहारी की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण है उनके काव्य में कला और भाव का बहुत ही सुन्दर और संतुलित समन्वय। कहीं भी भाव और कला एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते बल्कि एक दूसरे के सहयोगी बन कर आते हैं। भाव और कला का ऐसा सुन्दर सम्बन्ध हिन्दी साहित्य में तुलसीदास के अलावा अन्यत्र दुर्लभ है। दो पंक्तियों के दोहे में भाव का इतना सर्वौत्तम स्वरूप प्रस्तुत कर देना बिहारी की कलात्मक सफलता है। इसलिए कहा गया है कि बिहारी के दोहे नावक यानी शिकारी के बाणों की तरह हैं जोकि आकार में छोटे होते हुए भी लक्ष्य को गहराई से बोध देते हैं।

बिहारी ने मुक्तक लिखें हैं। मुक्तकों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कितने कम शब्दों में कितने अधिक भावों को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ भावों को प्रस्तुत करने का अर्थ सौन्दर्य की सृष्टि करना भी है। उनके दोहों में यह विशेषता देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में चरम-उत्कर्ष' को पहुँचा है, इसमें कोई सन्देह नहीं।' इस कारण बिहारी की गणना अत्यन्त सफल मुक्तककारों में होती है और इसका मूल कारण उनकी वे काव्यगत विशेषताएँ हैं जिनके फलस्वरूप उनका प्रत्येक दोहा कल्पना, सौन्दर्य, भाव और भाषा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ ठहरता है। साथ ही इन सब में बिहारी की मौलिक प्रतिभा उनके काव्यगत सौन्दर्य में चतुर्दिक वृद्धि कर देता है। इस तरह बिहारी के काव्य की काव्यगत विशेषताएँ लक्षित की जा सकती हैं-

जीवन के मार्मिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति

बिहारी मौलिक प्रतिभा के कवि हैं, उनकी मौलिकता जीवन के सूक्ष्म एवं मार्मिक प्रसंगो को खुली आँखों से देखने और उसे कविता में पूरी सफलता के साथ व्यक्त करने से उपजी है। बिहारी का मानव-प्रकृति से नजदीक का नाता था। वे मानव प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और उसकी परख में पारंगत थे। उन्हें ऐसे प्रसंगों और स्थलों की पूरी पहचान थी जो मनुष्य के मन को रमाते हों। उदाहरण के लिए उनका एक दोहा देख सकते हैं-

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करैं, भौंहनु हँसै, दैन कहैं, नटि जाइ।।

इस दोह में नायिका नायक की बांसुरी छिपा देती है किन्तु जब नायक अपनी बांसुरी माँगता है तो शपथ लेकर बताती हैं कि उसके पास बाँसुरी नहीं है। इस पर जब नायक निराश होकर वापस जाने को होता है तो नायिका उसे देखकर मुस्करा देती है, जिससे नायक को सन्देह हो जाता और वह अपनी बांसुरी पुनः मांगता है, जिस पर नायिका नट जाती है। इस तरह नायिका बांसुरी छुपाने आदि का आचरण केवल नायक से बात करने के लालच में करती है । यह मनुष्य जीवन का बहुत ही स्वभाविक , मार्मिक और निर्दोष प्रसंग है, जिसे बिहारी ने बहुत ही अधिकार भाव से प्रस्तुत किया है।

कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति

कल्पना की समाहार शक्ति का अर्थ जीवन के प्रेम आदि प्रसंगों का सूक्ष्म चित्रण और भाषा की समास शक्ति से आशय कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव सम्पदा का प्रस्तुतिकरण है। जिस रचनाकार में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति पर अधिकार हो वह एक श्रेष्ठ मुक्तककार होगा। इस लिहाज से बिहारी और उनका काव्य एक श्रेष्ठ मानक है। क्योंकि उन्होंने एक-एक दोहे में बहुत ही विशिष्ट सौन्दर्य की सृष्टि की है। एक पूरे घटनाक्रम, एक पूरी बातचीत को दो पंक्तियों के दोहे में चित्र की भाँति चित्रित कर देने में बिहारी अद्वितीय हैं। उदाहरण के लिए अपने इस दोहे में बिहारी ने नायक-नायिका के मान-मनुहार के सौन्दर्य को पूरी कलात्मक ऊँचाई के साथ व्यक्त किया है-

कहत, नटत, रीझत, मिलत, खिलत लजियात।

भरे भौन में करत हैं नैननु ही सब बात।।

नायक ने नायिका से मिलने का निवेदन किया किन्तु नायिका ने परिस्थितियों का हवाला देकर उसके निवेदन को अस्वीकार कर देती है। लेकिन अस्वीकार की उस अदा पर ही नायक को प्यार आ जाता है, अर्थात नायक रीझ जाता है। नायक के रीझने पर नायिका खीझ जाती है। आखिरकार दोनों का मिलन हो जाता है और इस पर नयाक व्यंग्यपूर्ण हंसी के साथ खिल उठता है और नायक की इस उद्दण्डता को देखकर नायिका स्वभावतः लज्जित हो जाती है।

इस दोहे में बिहारी ने नायक-नायिका के बीच घटित हुए एक प्रेम के जीवंत स्वाभाविक किन्तु शान्त प्रसंग को दो पंक्तियों में व्यक्त कर नायक-नायिका के प्रेम को और अधिक संवादी और 'इन्टेस' बना दिया है जो कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

क्रियाविदग्धता

बिहारी के काव्य की एक महत्वपूर्ण काव्यगत विशेषता उनकी रचनाओं में मौजूद क्रियाविदग्धता है। बिहारी ने अपनी नायिकाओं की क्रियाविदग्धता के माध्यम से सूक्ष्म भाव सौन्दर्य की सृष्टि की है। इसमें नायिकाएँ नायक अर्थात अपने प्रेमी से इस चतुराई और कुशलता के साथ संवाद करती है कि उन दोनों के अतिरिक्त कोई अन्य उस बातचीत का अभिप्राय नहीं समझ सकता। इस तरह के प्रयोग बिहारी के काव्य के आर्कषण में अत्यधिक बृद्धि कर देते हैं। उदाहरण के लिए बिहारी का एक दोहा देखा जा सकता है जिसमें क्रियाविदग्धता नायिका की एक चेष्टा में पाँच भिन्न अर्थ निकलते हैं-

हरिष न बोली, लखि, ललनु, निरखि अमिलु संग साथ।

आंखिनु ही मैं हंसि धरयौ सीस हियै धरि हाथ।।

अर्थात नायक को देखकर प्रसन्न नायिका भाषा के स्तर पर नायक से अपनी खुशी व्यक्त नहीं कर पाती इसलिए वह अपनी खुशी को आँखों से व्यक्त करते हुए अपने हाथ को दिल पर रख लेती है। नायिका की यह चेष्टा दूसरों के लिए किसी महत्व की नहीं है किन्तु हंसती हुई आंखों के साथ दिल पर हाथ रखना में नायक के लिए कई तरह के संदेश हैं, जैसे- 1. तुम मेरे दिल में रहते हो, 2. मैं शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं आधी रात को तुमसे मिलूंगी, 3. मैं दोनों पर्बतों के मध्य पड़ने वाले बाग में कृष्णपक्ष में तुमसे मिलूंगी, 4. मैं जमुना तट पर स्थिति शिव मन्दिर में मिलूंगी, 5. मुझे याद है कि मैंने तुमसे मिलने का वचन दिया है और मैं सूर्यास्त के समय तुमसे मिलूंगी । इस तरह बिहारी ने क्रियाविदग्धता के माध्यम से एक क्रिया से एक से अधिक अर्थ का निष्पादन कर अपनी एक विशिष्ट काव्य-प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

व्यंजकता

बिहारी का 'बिहारी सतसई' बुनियादी तौर पर ध्वनि काव्य है। बिहारी ने व्यजंना शक्ति के माध्यम से अपरिमित एवं गूढ़ भावों को अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। इसीलिए बिहारी के दोहों में व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है। व्यंग्यार्थ का यह गुण बिहारी की विशुद्ध मौलिक प्रतिभा से उत्पन्न हुआ है। बिहारी के एक-एक दोहे में एक से अधिक अर्थ भरे रहते हैं। व्यंजकता का एक श्रेष्ठ उदाहरण है-

लिखन बैठि जाकी सबिह, गहि गहि गरब गरूर।

भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।।

इस दोहे में बिहारी नायिका के अद्वितीय रूप की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि नायिका का चित्र बनाने के लिए बड़े-बड़े चित्रकारों ने कोशिश की किन्तु कोई सफल नीं हो सका। बिहारी चित्रकारों की असफलता के कारण नहीं बताते। चित्र नहीं बना पाने का कारण कुछ भी हो सकता है। जैसे 1. नायिका इतनी सुन्दर थी कि उसके रूप को देखकर चित्रकार अपना होश खो बैठते थे। 2. चित्रकार नायिका के रूप को देखते रह जाते थे, चित्र बनाना भूल जाते थे। 3. चित्रकारों की निगाह नायिका के जिस अंग पर पड़ती थी वे उसी का चित्र बनाने लग जाते थे, नायिका की पूरी छवि उनसे ओझल हो जाती थी। 4. नायिका का सौन्दर्य पूर्ण था, पूर्णता के समझ आते ही बड़े से बड़े चित्रकारों (कलाकारों) का कर्तापन मिट जाता था, और वे चित्र नहीं बना पाते थे। अपनी प्रतिभा, काव्य विवेक और मनुष्य जीवन-व्यापार को गहराई से समझने के कारण व्यंजकता बिहारी की कविता का महत्वपूर्ण गुण बन गया है। बिहारी का एक और सुप्रसिद्ध दोहा व्यंजकता का अप्रतिम उदाहरण है-

नहिं पराग नहि मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सौं विध्यौ आगे कौन हवाल।।

इस दोहे का सामान्य अर्थ कली और भौंरे से जुड़ा है, किन्तु यह अपनी व्यंजना में राजा जयसिंह के आचरण और अपनी नवविवाहिता के प्रति आसक्ति से भी सम्बन्धित है।

वाग्वैदग्ध्य

बिहारी के काव्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसमें मौजूद वागविदग्धता है। वागविदग्धता का अर्थ भावों के अनुसार शब्दों का प्रयोग है। जिसमें बिहारी अद्वितीय हैं। इस दृष्टि से 'बिहारी सतसई' का पहला दोहा ही उल्लेखनीय है-

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।

जा तन की झाई परैं, स्याम हरित दुति होई।।

बिहारी इस दोहे में अपने दुखों के हरण के लिए राधा से प्रार्थन करते हैं, साथ ही वे इस कार्य के लिए राधा की योग्यता को भी रेखांकित करते हैं। जो वागविदग्धता का बेजोड़ उदाहरण है- 1. राधा जो श्रीकृष्ण की 'दुति' का 'हरण' करती हैं। 2. राधा के गौर वर्ण वाले शरीर की छाया पड़ने से सावंले रंग वाले श्रीकृष्ण का रंग हरा हो जाता है। 3. राधा का ध्यान करने से पापों का नाश हो जाता है। 4. राधा की झलक मात्र से श्रीकृष्ण का मन प्रसन्न हो जाता है। 5. राधा श्रीकृष्ण की आदि शक्ति हैं, कृष्ण राधा से ही शक्ति पाते हैं। ऐसे में श्रीकृष्ण अपनी आदि शक्ति को पाकर 'हरे'(शक्तिमान) हो जाते हैं। वागविदग्धता के ऐसे अनेक उदाहरण बिहारी के काव्य में भरे पड़े हैं।

प्रेम-श्रृंगार का चरम वैभव

बिहारी के काव्य में श्रृंगार रस का चरम वैभव उपलब्ध है। 'बिहारी सतसई' का मूल रस श्रृंगार ही है। उसमें श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग चित्रित किये गए हैं। बिहारी ने नायिका के अंग-प्रत्यंग, हावभाव, नायक नायिका के प्रेम प्रसंगों और क्रीड़ाओ का सरस तथा सजीव वर्णन किया है। बिहारी का प्रेम भी सामान्य गृहस्थ जीवन का प्रेम है। उनके यहाँ प्रेम शुद्ध अशरीरी नहीं है। बिहारी के प्रेम जीवन का आर्दश परेवा का सुखी जीवन है जिसमें किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है और कोई अभाव नहीं है-

पदु पाखैं भखु कांकरे सपर परेई संग।

सुखी परेवा पुहुमि में तू ही एक विहंग।

प्रिय के साहचर्य के सुख को इतना महत्व देना जीवन में अत्यंत स्वभाविक है। इसी उल्लास को बिहारी एक दोहे में रेखांकित करते हुए मुक्ति (मोक्ष) को अस्वीकार कर देते हैं-

चमक तमक, हांसी, हंसी समक मसक झपट लपटानि।

ए जिहिं रति सो रति मुकति, और मुकति अति हानि।।

तो वहीं बिहारी का श्रृंगार वर्णन नितान्त स्वाभाविक है। बिहारी एक ग्रामीण युवती के निरंलकार सौन्दर्य पर इसलिए मुग्ध हैं कि जब वह गदराये शरीर वाली युवती हंसती है तो उसके गालों में गड्ढ़े पड़ जाते है। श्रृंगार के नाम पर उसने एक चमकीले कीड़े की पांख या सुनहले रंग के जंगली पौधे की पत्ती का एक टुकड़ा बिन्दी के रूप में लगा लिया है-

गोरी गदकारी परैं हंसत कपोलन गाड़।

कैसी लसति गंवारि यह, सुनकिरवा की आड़।।

श्रृंगार का एक ऐसा ही दोहा राधा-कृष्ण की प्रेम क्रीड़ा का है-

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।

सौंह करै भौंहनु हंसे देन कहै नटि जाय।।

बिहारी का काव्य श्रृंगार और प्रेम के ऐसे बहुत सारे चित्रों से सजा है। उसमें सामान्य जन जीवन, गृहस्थ जीवन के प्रेम के चित्रों से लेकर नायक-नायिका के बीच के स्वाभाविक राग-विराग सम्मिलित है। बिहारी का प्रेम और श्रृंगार वर्णन कोरी कल्पना न होकर उस समय की वास्तविकता की उपज है इसलिए वह विश्वसनीय और मोहक है।

प्रकृति चित्रण

मनुष्य का सरोकार हमेशा से प्रकृति से रहा है। पेड़ पौधे, पशु पक्षी , नदी तालाब, घाटी पहाड़ से मनुष्य का जीवन गहरे अर्थों में जुड़ा रहा है। वस्तुतः पूरे रीतिकालीन काव्य का प्रकृति से बहुत ही नजदीक का रिश्ता रहा है। बिहारी के अतिरिक्त सेनापति जैसे कवि तो अपने प्रकृति वर्णन के लिए ही प्रसिद्ध हैं। बिहारी का प्रकृति वर्णन मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध में सन्तुलन की तरह है। बिहारी प्रकृति को सौन्दर्य के उपमानों के रूप में श्रृंगार के भावों के सहायक के रूप में और सांकेतिक अर्थो के माध्यम के रूप में चित्रित करते हैं-

सोन जुही सी जगमगै अंग-अंग जोबन जोति।

सुरंग-कसूंभी, कंचुकी, दुरंग देह-दुति होति।।

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बाहर।

अब अलि, रही गुलाब में, अपत कंटीली डार।।

तो वहीं बिहारी एक दोहे में चैत के महीने में आमों के बाग दूर से मंजरियों की मादक गन्ध से भ्रमरों को आकर्षित करते हैं। मंजरियों को घेर कर गुनगुनाते हुए भौंरे उस आकर्षण को ध्वनिमय बनाते हैं-

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी-गंध।

ठौर-ठौर झौरत झूमत झंपत, झौर-झौर मधु-अंध।।

इसी तरह जेठ की दोपहरी का वर्णन करते हुए बिहारी कहते हैं कि-

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन-तन मांह।

देखि दुपहरी जेठ की छांहौं चाहति छांह।।

इस दोहे में 'छांहौ चाहति छांह' कह कर बिहारी ने जेठ की तपती दोपहरी के भयंकरता को मूर्तिमान कर दिया है। दूसरे रीतिकालीन कवियों की तरह बिहारी ने भी प्रकृति को आलम्बन के रूप में ही चित्रित किया हैं। किन्तु अनुभूति की सघनता और विश्वसनीयता बिहारी के प्रकृति चित्रण को महत्त्वपूर्ण बनाती है।

3.6 बिहारी की बहुज्ञता

पं. रामचन्द्र शुक्ल के बिहारी को फुटकर खाते में रखने पर भी बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं। यह सर्वश्रेष्ठता उनकी बहुज्ञता के कारण ही है। बिहारी की सभी विषयों में रुचि थी, वे लोकवृत्त को ठीक रूप से समझने में सचेष्ट थे। कोई भी विषय ऐसा नहीं जो इनकी सूक्ष्म दृष्टि से बचा हो। इन्होंने सभी बातों को काव्य में इस सुन्दरता से गूँथ दिया कि उनकी सतसई हिन्दी साहित्य का श्रृंगार बन गई। इसी बात को देकते हुए डॉ. रामसागर त्रिपाठी

ने कहा है, 'काव्य मं सामान्य सिद्धान्तों का समावेश करना और शास्त्रों के गहन विचारों में न उलझना आप में स्वयं एक सफलता है, जिसके लिए बिहारी की प्रशंसा की जानी चाहिए।'

साहित्य शास्त्रीयज्ञान- बिहारी को साहित्यशास्त्र का बहुत अधिक ज्ञान था। इसी ज्ञान के बल पर उन्होंने श्रृंगार रस के सभी अंगों का इतना सुन्दर विवेचन किया। बिहारी ने केवल परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग नहीं किया अपितु बुद्धि बल से नई नायिकाओं एवं नये उपमानों की खोज भी की । अनुभावों एवं मुद्राओं के अंकन में बिहारी की समता बहुत कम श्रृंगारी कवि कर पाते हैं।

सांस्कृतिक एवं प्राकृत साहित्य का ज्ञान- बिहारी को न केवल हिन्दी अपितु अन्य भाषाओं का भी पूर्ण ज्ञान था। बिहारी सतसई को देखकर इस बात का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। उन पर गाथा सप्तशती, अमरुक शतक, विकट, नितम्बा, आर्यासप्तसती, गीतगोविन्द, कालिदास, श्री हर्ष, आदि का अमिट प्रभाव था। इन सबका बिहारी ने गहन गम्भीर अध्ययन किया था। एक-आध उदाहरण से इस कथन को पुष्ट किया जा सकता है। यथा- गाथा सप्तशती की निम्नलिखित गाथा का बिहारी पर पूर्णतया प्रभाव था-

जावण कोस विकास पावइ, ईद सी मालई कलिया।

मअरनदपाणलोहिलल अमर ताविच्छअ भलेसि।।

इसका अक्षरशः भाव बिहारी के निम्न दोहे में देखा जा सकता है-

नहिँ परागु, नहिँ मधुर मधु, नहिँ विकासु इहिँ काल।

अली, कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।।

इस प्रकार सभी का प्रभाव बिहारी पर देखा जा सकता है। स्पष्टतः उन्हें अनेक भाषाओं का पूर्ण ज्ञान था।

कामशास्त्र का ज्ञान- बिहारी को इसका भी पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने दन्त-क्षत, नख-क्षत, विपरीत रति आदि का वर्णन भी कामशास्त्रीय आधार पर किया। बिहारी पर रति के विभिन्न आसनों का भी प्रभाव द्रष्टव्य है-

पलनु पीक, अंजनु, अधर, धरे महावरु भाल।

आजु मिलै, सु भली करी, भले बने हौं लाल।।

बिहारी ने प्रेम प्रदर्शन की अनेक चेष्टाएँ भी कामशास्त्रीय पद्धित पर ही लिखी हैं।

ज्योतिष का ज्ञान- बिहारी ज्योतिषशास्त्र में विशेष दक्ष प्रतीत होते हैं। इन्होंने ज्योतिष के गहन सिद्धान्तों को विवेचित एवं विश्लेषित किया। मध्यकालीन परिवेश और कवि की बहुज्ञता कई सिद्धान्त तो इतने अनुठे हैं जिनको सर्वसाधारण जानते तक नहीं। ज्योतिषशास्त्र का बिना गम्भीर अध्ययन किए उन सिद्धान्तों का काव्य में समावेश असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य कहा जा सकता है। बिहारी लिखते हैं-

मँगलु बिँदु सुरँगु, मुख ससि केसरि-आड़ गुरु।
इक नारी लहि सँगु, रसमय किय लोचन-जगत्।।

नीति-ज्ञान- बिहारी श्रृंगार के समान नीति सम्बन्धी उक्तियों में भी माहिर थे, उनकी नीति सम्बन्धी उक्तियाँ व्यावहारिकता पर आधारित हैं, अतः वे कोरे शुष्क नीतिकथन नहीं, तभी तो इनकी उक्तियों में इतनी सरसता एवं मधुरता मिलती है। बिहारी ने सभी प्रकार की नीति विषयक उक्तियाँ कहीं हैं। इन सबका विस्तृत अध्ययन सप्तम परिच्छेद में किया जा चुका है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं बिहारी ने श्रेष्ठ नीति विषयक दोहे लिखे जो उनकी प्रखर बुद्धि , प्रतिभा एवं बहुज्ञता का स्पष्ट प्रमाण हैं।

राजनीति ज्ञान – बिहारी का अधिकांश समय राज दरबारों में व्यतीत हुआ था। फलतः राजनीति की बारीकियों से वे भली भाँति परिचित हो चुके थे। तभी तो उन्होंने राजनीति सम्बन्धी इतनी सुन्दर उक्तियाँ कहीं हैं, यथा-जब व्यक्ति सत्ता में आ जाए तो तब वह अपने सम्बन्धियों को, पक्षधरों को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देता है एवं विपक्षी को समाप्त कर देता है। बिहारी को सन्धि-विग्रह आदि का भी ज्ञान था। वे जानते थे कि जब सन्धि न हो सके तब सुरंग लगाकर ही विजय प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी राजनीति में भी पारंगत थे।

युद्ध-कला का ज्ञान- बिहारी युद्ध के नियमों से पूर्णतया भिज्ञ थे। चाहे बिहारी स्वयं युद्ध स्थल पर नहीं गए हों, फिर भी राज्याश्रय के कारण इसकी बारीकियों से परिचित हो गए थे। उन्हें मालूम था कि जब सेनाएँ युद्ध भेजी के लिए प्रस्थान करती है, तब उनके आगे चलने के लिए सेना की

छोटी टुकड़ी भेजी जाती है, जिससे मुख्य सेना सुरक्षित रहे और उस सेना की आड़ से शत्रु पर प्रहार हो सके। सेना के इस भाग को 'हरौल' कहा जाता था। सच्चे योद्धा हजारों लोगों में भी अपने दुश्मन को पहचान लेते हैं और उनकी दृष्टि उस पर लगी रहती है। जब सेना को आवास स्थान छोड़ना पड़ता है तो कोई दुर्बल प्रतिपक्षी स्वयं रक्षा के लिए वन में किसी छोटे से निवास-स्थल में जा छिपता है। बिहारी ने केवल इन सिद्धान्तों का वर्णन नहीं किया अपितु युद्ध भूमि का भी वर्णन किया। लगता है कि उस समय युद्ध वर्णन अत्यावश्यक हो गया था। जिन कवियों के पास युद्ध पास युद्ध वर्णन के प्रसंग थे, उन्होंने तो इसे निभा दिया परन्तु बिहारी जैसे श्रृंगारी कवि – जिनका काव्य कामिनी केन्द्रित था कैसे इसका वर्णन करते ? परन्तु बिहारी ने फिर भी युद्ध का बड़ा ही सुन्दर में अवतरित होती हैं, बलपूर्वक प्रहार होते हैं, बस इन सभी बातों को लेकर बिहारी ने युद्ध का घटना स्थल बदल दिया। 'रज-धूलि' में छाये अन्धकार की बजाय रात्रि के स्वाभाविक अन्धकार का उपयोग किया। सेनाएँ तैयार हैं, मंजीर (युद्ध के वाद्य यन्त्र) ध्वनित होकर युद्धारंभ की घोषणा करते हैं। 'जोर' के प्रहार होने लगे, वाद्य मीन हो गए, सुरति रणधीर विपरीत रति संग्राम में

मध्यकालीन परिवेश और कवि की बहुज्ञता

अविचल होकर डटी है, इसका ज्ञान केवल किंकणी के कोलाहल से होता है-

परयौ जोरू, विपरीत रति रूपी सुरत-रन-धीर ।
करति कुलाहलु किँकिनी गह्यौ मौनु मंजीर।।

आखेट कला का ज्ञान- बिहारी को शिकार की सामान्य बातों की भी पूर्ण जानकारी थी। शिकार को कैसे घायल किया जाता है, कैसे पकड़ा जाता है, इसका भी उन्हें पता है।

मनोविज्ञान का ज्ञान- बिहारी मनुष्य के मनोविज्ञान से भली-भाँति परिचित थे। वे जानते थे कि किस परिस्थिति का किस व्यक्ति के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, निम्न व्यक्ति का कैसा स्वभाव होता है, लोभ बढ़ने पर व्यक्ति को किस प्रकार छोटे भी बड़े लगने लगते हैं, दुःख में कितनी व्याकुलता होने लगती है आदि आदि। इस प्रकार उन्होंने मानव स्वभाव का बड़ा ही सजीव चित्रांकन किया है।

अन्धविश्वास- बिहारी लोगों के भ्रमवश अज्ञान से भी भली-भाँति परिचित थे। यज्ञ आदि के कर्मकाण्डों का वर्णन भी बिहारी ने बड़ी अच्छी तरह किया।

नट विद्या का ज्ञान- बिहारी नट ज्ञान से भी पूर्णतः परिचित थे। इन्होंने नट के खेल एवं कार्यों के ढंग का बड़ा ही सुन्दर एवं सरस वर्णन किया है।

कृषि ज्ञान- किस समय में खेती बोई जाती है, कब सींयी जाती है एवं कब काटी जाती है, इन सब का ज्ञान भी बिहारी को था। सतसई में उनके कृषि विज्ञान के परिचायक कई दोहे मिलते हैं।

पौराणिक जानकारी- बिहारी को पुराणों की भी समग्र जानकारी थी , बिहारी सतसई में पौराणिक आख्यानों के दोहे यत्र-तत्र बिखरे दिखाई देते हैं। यथा-कहीं पर द्रौपदी के चीर हरण, कहीं दुर्योधन की जल-स्तम्भन सम्बन्धी कथा कहीं दुर्योधन की मृत्युकथा, कहीं हनुमान जी को ग्रसने वाली राक्षसी, कहीं सीता की अग्नि परीक्षा, कहीं जटायु का उद्धार कही मदन दहन, कहीं वामनावतार, कहीं गजग्राह कहीं गौवर्धन धारण, कहीं इन्द्रकोप, कहीं रुकमणी हरण आदि पौराणकि आख्यानों का वर्णन भी किया है।

> बिहारी में ये गुण इतने अधिक भास्वर रूप में दिखाई पड़ते हैं कि इनको लेकर ही आलोचक बिहारी में वे गुण भी देखने लगते हैं जो वस्तुतः उनमें नहीं थे।

गणित का ज्ञान- बिहारी ने लिखा है कि 'बिकारी लगा देने से दाम का रुपया हो जाता है एवं अंक पर दायीं ओर शून्य बना देने से उसका मूल्य दस गुना बढ़ जाता है।' इसी आधार पर आलोचकों ने इनको गणितज्ञ कहना प्रारम्भ कर दिया, जबकि इसमें गणित की सामान्य बातों का ही उल्लेख किया गया है।

वैद्यक का ज्ञान- बिहारी के दोहों में 'नारी ज्ञान', 'रोग निदान'। 'सुदर्शन', 'विषम जुर'[3] जैसे शब्दों को देखकर आलोचकों ने आदतन उन्हें धन्वन्तरि कहना प्रारम्भ कर दिया। यह ठीक है कि बिहारी ने वैद्यक की कोई नई बात नहीं की फिर भी यह दोहे उनके सामान्य ज्ञान के परिचायक अवश्य हैं।

संगीत का ज्ञान- बिहारी ने संगीत का सामान्य परिचय देते हुए लिखा है कि जब तक तंत्रीनाद एवं सरस राग में मनुष्य पूर्णतया नहीं रंग जाता तब तक उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।

नृत्य का ज्ञान- नृत्य का वर्णन भी बिहारी ने किया है।

दर्शन का ज्ञान- बिहारी सतसई श्रृंगार कृति होते हुए भी उसमें कहीं-कहीं दर्शन की छाप परिलक्षित होती है। बिहारी ईश्वर को सर्व-व्यापक एवं सारे जगत को उसका प्रतिबिम्ब मात्र

मानते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि बिहारी ने दर्शन की कुछ ही बातों का प्रतिपादन किया, इतने मात्र से ही उन्हें दार्शनिक कहना उचित प्रतीत नहीं होता। हाँ, दर्शन के बारे में वे बिलकुल अनजान थे, ऐसी बात नहीं है।

भक्ति सम्बन्धी ज्ञान- भक्ति के दोहे भी कहीं-कहीं बिहारी सतसई में मिल जाते हैं परन्तु उनकी यह भक्ति , श्रृंगार भावना से आच्छादित थी। वस्तुतः उन्होंने भक्त की तात्विक बातों का ही संश्लेषण-विश्लेषण अधिक किया, सरसता कहीं-कहीं खंडित हो गई है। परन्तु हम कह सकते हैं बिहारी श्रृंगार के कवि होते हुए भी उनके पास एक भक्त कवि का हृदय था। यह अलग बात है कि परिस्थियोवश वे इसका पूर्ण उपयोग न कर पाए।

भाषा का ज्ञान- बिहारी का भाषा पर असाधारण अधिकार था। उनको संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश का भी पूर्ण ज्ञान था। मुख्यतः उनकी भाषा ब्रज थी परन्तु भाषा का अपरिमार्जित एवं अव्यवस्थित रूप इन्हें पसन्द न था, तभी तो इन्होंने अपनायी जाने वाली भाषा के रूपों पर ध्यान दिया एवं एक परिमार्जित तथा यथासाध्य प्रयोग बैषम्य से रहित ढाँचा तैयार किया। उनसे पहले उनकी निर्दिष्ट भाषा का कोई व्याकरण नहीं था। किसी भी कवि की भाषा परिमार्जित नहीं थी। डॉ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ब्रजभाषा के कवियों में तोड़-मरोड़कर विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। भूषण और देव ने शब्दों का बहुत अंग-भंग किया और कहीं गढ़न्त शब्दों का व्यवहार भी किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से बहुत कुछ मुक्त है।[4] डॉ. रामसागर त्रिपाठी के अनुसार भी बिहारी से पहले किसी भी कवि की भाषा इतनी परिमार्जित और सुगठित नहीं मिलती। बिहारी ने प्रथम बार भाषा में एक-रूपता लाने की चेष्टा की और इसका प्रभाव परवर्ती काव्य-जगत् पर पड़ा। जिससे बाद के कवि घनान्द इत्यादि अधिक परिष्कृत भाषा लिखने में समर्थ हो सके। यही बिहारी की भाषा विषयक सफलता हैं। बिहारी ने भाषा की सज्जा के लिए जहाँ संस्कृत के अनेक शब्दों को जड़ा है, वहाँ परम्परागत काव्य भाषा के घिसे-पिटे एवं बोलचाल के अनेक पुराने शब्दों को भी रहने दिया। और अवधी, बुन्देलखण्डी, खड़ी बोली आदि भाषाओं के साथ ही साथ उर्दू फासरी के शब्दों को भी निस्संकोच स्वीकार कर लिया।[1] वस्तुतः मुस्लिम संस्कृति से घुलने-मिलने के कारण देशी भाषा में 'एहसान, दमामा, इजाफा, कबूल, नेजा, साबित, खूनी' जैसे शब्द इतने मिल गये थे कि उनमें से विदेशीपन की बू समाप्त हो गई। बिहारी के काव्य में तत्सम् ('कालिन्दी, कच, कपोल, आनन, अधर, अद्वैतता, केलि, कोकनद-कोक, गगन, गिरि, गोरज आदि)', तद्भव- ('अनत, आशिव, गिद्ध, गाँठि, आजहु, पत्रा,दीठि,

मुन्द्री,मोष, सौंह, पच्छी,बत्तियाँ जोबन') एवं अर्द्ध तत्सम-('अंगना, बाम, वसन्त, भ्रव, दखिन, विकासु, मादक,परागु') आदि शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। भाषा पर असाधरण अधिकार होने के कारण मुक्तकों के लिए जिस लघु कलेवर छन्द को अपनाया। उसमें भाषा की चुस्ती , सशक्तता एवं कसावट सबसे अधिक थी। उनका शब्द चयन अद्वितीय था। वे जानते थे कि किस सन्दर्भ में कौन सा शब्द सबसे अधिक उपयुक्त हो सकता है।

आचार्य शुक्ल ने मुक्तक काव्य के लिए जिस समास शक्ति को अनिवार्य बताया है, वह बिहारी में कूट-कूट कर भरी हुई थी। लम्बे-लम्बे समासों में भी इनका काव्य-सौन्दर्य एवं भाव गाम्भीर्य तनिक भी कम नहीं हुआ, यथा-

बिकसित-नवमल्ली-कुसुम-निकसित परिमल पाइ।

परसि पजारति विरही-हिय बरसि रहे की बाइ।।

भाषा की समासशक्ति के कितने ही दोहे बिहारी की सतसई में देखे जा सकते है। पंण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही कहा है - बिहारी ने अपनी समास शक्ति के अनुकूल अपनी भाषा भी बहुत चुस्त रखी है। निश्चय ही यह बिहारी की मौलिक विशेषता है। कल्पना की समाहार शक्ति भी इनकी भाषा समास शक्ति से समन्वित है-

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत,खिलत, लजियातु।

भरे भौन में करत हैं नैननु ही सौं बात।।

कहने का अभिप्राय यह है कि समीम में असीम की झलक दिखाने की विचित्र शक्ति बिहारी की भाषा में हैं।

बिहारी की भाषा में नाद-सौन्दर्य , चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, आलंकारिता, मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग, माधुर्य, ओज और प्रसाद आदि सभी गुण पाए जाते हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बिहारी की काव्य-भाषा परिमार्जित , शुद्ध, रमणीय एवं व्याकरण से गठित हैं। इसमें व्यंजना की अपार क्षमता है एवं प्रसाद गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान एवं नागरिक नायिका वर्णन में उनकी भाषा एकदम परिवर्तित होती है। भाषा की समासशक्ति, कल्पना की समाहार शक्ति, कसावट और मुहावरों से सज्जित चुस्त काव्य रचना, चित्र योजना,

भावाभिव्यंजना एवं अप्रस्तुत विधान सभी का सौन्दर्य बिहारी के दोहों में इतनी सुन्दरता से सिमट गया कि शायद इसी कारण है पं. शुक्ल को यह निर्णय देना पड़ा हो।– 'मुक्त रचना में जो गुण होने चाहिए वह बिहारी में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है। लिंग की गड़-बड़ आदि होने पर भी यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि बिहारी का भाषा पर अच्छा और सच्चा अधिकार था।

त्यौहारों का भी ध्यान था। बिहारी को भूगोल के बारे में भी थोड़ा बहुत पता था।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी की दृष्टि अति पैनी थी, बुद्धि प्रखर थी, प्रतिभा वाल्यपन से थी, अतएव उनको बहुत से विषयों का ज्ञान था। वे केवल कवि ही नहीं अपितु इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ थे।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बिहारी सर्व विषय निष्णात नहीं थे, परन्तु उनकी ज्ञान पिपासा इतनी तीव्र थी, उनका मस्तिष्क मधुमक्खी की तरह फूल का रस लेकर एक विशाल ज्ञान भण्डार बन गया था। जिसका समुचित उपयोग उनके काव्य में मिलता हैं।[3] बिहारी की साधना एकान्तनिष्ठ नहीं थी न ही उनका ज्ञान केवल मात्र पुस्तकीय था। अपितु इतना विस्तृत ज्ञान रखने वाले तो बहुत ही कम कवि हुआ करते हैं। बिहारी निश्चय ही एक जागरूक , बहुश्रूत, बहुपठित एवं बहुरुचि सम्पन्न कवि थे। उनके काव्य में उस युग की संस्कृति पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बित होती है। बिहारी का काव्य सौन्दर्य रस के भार से उस नायिका की भाँति हो गया है जो सुन्दरता के भार से सीधे पैर नहीं रख सकती.....

'सूधौ पायँ न धर परत शोभा ही के भार'

6.3.1 व्याख्या भागः भक्ति

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।

जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होइ।।

शब्दार्थः भव = संसार, दुनिया। **बाधा** =विघ्न, मुश्किल । **भव-बाधा** = संसारिक दुःख, दरिद्रता, अपमान, चिन्ताएँ आदि जो मनुष्य को व्यथित किये रहती हैं। **नागरि** = चतुर, सयानी। **झाँई** = आभा, परछाँई, झलक। **परैं** = पड़ने से। **स्यामु** = श्रीकृष्ण , सांवले रंग वाले कृष्ण, काला रंग (दुःख

दरिद्रता , बाधा के अर्थ में) **हरित** = हरा। **दुति** = चमकदार। **संदर्भः** उपर्युक्त दोहा रीतकाली के श्रेष्ठ कवि बिहारी द्वारा रचित हैं जिसे उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' में संकलित किया गया है।

प्रसंगः बिहारी अपने भक्तिपरक दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं। रीतिकालीन काव्य परम्परा के अनुसार श्रृंगार और नीति सम्बन्धी दोहों के अलावा बिहारी ने भक्ति के भी श्रेष्ठ दोहे लिखे। व्याख्या के लिए दिये गये दोहे में बिहारी राधा जो कृष्ण की आदि शक्ति हैं, से अपने जीवन के दुःखों को दूर करने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। यह भक्ति भाव का श्रेष्ठ दोहा है।

व्याख्याः वे चतुर, (सर्व सामर्थ्यवान) राधा मेरे जीवन के समस्त दुःखों को दूर करें, जिनके शरीर की परछाहीं पड़ने मात्र से श्रीकृष्ण का श्याम रंग हरे रंग में बदल जाता है।

जीवात्मा 'भव' बाधा से मुक्त होने के लिए राधा की आराधना करती है। राधा में वह योग्यता है जिससे वे जीव के अनुरोध को स्वीकार कर उसके दुःख को दूर कर सकती हैं। राधा की इसी योग्यता को रेखांकित करते हुए जीव प्रार्थना करता है कि वे ही (सोय या सोइ) राधा मेरी भवबाधा का हरण करें जो श्रीकृष्ण की 'दुति' का 'हरण' करती हैं। यहाँ इस क्रिया के कई अर्थ हैं। 1. श्यामवर्ण के श्रीकृष्ण की देह पर राधा की आभा (झाई) पड़ते ही मुख्य दुति (श्यामलता) का हरण हो जाता है। कृष्ण का रंग सावंले से गोरा हो जाता है। 2. राधा की आई (झलक) मात्र इतनी प्रभावशाली है कि उसके (कृष्ण की आँखों में) पड़ते ही कृष्ण का मन हरा (बदल जाना, अच्छा होना,प्रसन्न् होना) हो जाता है। 3. जो शक्ति (माया) इस 'भव' को संभव करती है वही इससे उत्पन्न 'भय' का हरण भी कर सकती है।

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न उनकौ कामु।

मन- काँचै नाचै बृथा, साँचै राँचै रामु।।

शब्दार्थः जपमाला = माला जिस पर जाप किया जाता है। **छापैं** = छाप (द्वारका के पुराने मन्दिर में धातु की मुद्राओं को आग में गर्म कर भक्तों की देह पर छाप दिया जाता था, जिससे स्थायी चिन्ह 'छापा'उभर आता था। वह उस समय भक्ति का एक प्रकार का प्रतीक हुआ करता था।) **तिलक** =माथे पर लगाया जाने वाला टीका। **सरैं**= होना, काम निकलना। **मन काँचै** = कच्चे मन वाला, कमजोर आस्था वाला, भक्ति से रहित मन वाला। **साँचै** = रंजित होता है, प्रसन्न होता है।

प्रसंग : सच्ची भक्ति के लिए बाह्य आडम्बरों की व्यर्थता को स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा कि भक्ति की सच्ची आस्था, पवित्रता और निष्ठा से सम्बन्धित है । वेशभूषा, चन्दन टीका, माला आदि बाह्य प्रती हैं। सच्ची भक्ति में इनका कोई स्थान नहीं है ।

व्याख्या : जप की माला (जपने और धारण करने) से, छापा बनवाने से और तिलक लगाने से एक भी काम नहीं बनता, यह सब करते हुए कच्चे मन वाला व्यर्थ (वृथा – बिना कुछ लाभ के) ही नाचता रहता है । राम (ईश्वर) तो सच्चे (आचरण वाले) से ही प्रसन्न (राँचै) होते हैं ।

मैं समुझयौ निरधार, यह जगु काँचो काँच सौ।

एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियत जहाँ।।

शब्दार्थः निरधार = निश्चय । **काँचों** = टूटकर अनेक रूपों में बिखर जाने वाला। **काँच** = शीशा। **एकै** = एक। **अपार** = अनंत।

प्रसंगः कवि ने दुनिया की नश्वरता और ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन किया है। जिसमें कहा गया है कि मनुष्य इस दुनिया को इसकी नश्वरता के बावजूद सत्य मानता है और इसमें फंसा रहता है। जबकि सत्य यह है कि एक मात्र ईश्वर की सर्वव्यापी है।

व्याख्याः मैंने निश्चित रूप से (निरधार) यह जान लिया है कि यह संसार कच्चा (टूटकर अनेक रूपों में बिखर जाने वाला) शीशा है। इसलिए इस संसार के प्रत्येक टुकड़े में प्रत्येक कण में जिनकी संख्या अनन्त(अपार) है, एक ही रूप (ब्रह्म का) प्रतिबिंबित होता हुआ दिखाई दे रहा है।

नीति

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।

अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रहब-चंदु।।

शब्दार्थः दुख-दंदु = दो प्रकार के दुःखों का संघर्ष (दुख-द्वन्द)।

प्रसंगः कवि की प्रस्ताविक उक्ति है कि 'दुराज' अर्थात दुअमली में प्रजा को अधिक दुःख उठाना पड़ता है।

व्याख्याः दुःसह द्विराज में प्रजाओं के निमित्त दुःख का द्वन्द क्यों न बढ़े। (देखो) अमावस को सूर्य (तथा) चन्द्रमा मिलकर (एक राशि पर अधिकार करके) जगत में अधिक (और सब तिथियों की अपेक्षा विशेष) अंधेरा (1. तिमिर 2. अंधेर, अत्याचार) करते हैं।

नहिं परागु, नहीं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।

अली, कली ही सौं बंध्यौं, आगैं कौन हवाल।।

शब्दर्थः परागु = पराग (फूलों में मौजूद कण)। **मधुर** = मीठा। **मधु** = शहद। **बिकासु** = खिलना, विकसित होना। **अली** = भौंरा । **बंध्यौ** = बंधना, बिंध जाना। **हवाल** = स्थिति , दशा।

प्रसंगः यह बिहारी का बहुत प्रसिद्ध दोहा है। माना जाता है कि राजा जयसिंह अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में पड़कर राज-काज से विमुख हो गये थे तब बिहारी ने राजा को यह दोहा लिखकर भिजवाया। राजा ने जब यह दोहा पढ़ा तब उनको अपनी गलती का एहसास हुआ और वे वापस अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत हो गए। यह दोहा अन्योक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है। राजा जब अपनी आसक्तियों के चलते राजकाज से विमुख हो जाता है, तो उसे किस प्रकार 'कान्तासम्मत उपदेश' दिया जा सकता है, यह दोहा उसका उदाहरण है। अवयस्क युवती के प्रेम में पड़े हुए किसी भी पुरुष पर यह दोहा लागू हो सकता है।

व्याख्याः अभी इस कली (अविकसित पुष्प) में पराग नहीं आया है, मधुर मधु का सुजन नहीं हुआ है, अभी (इहिं काल) इस कली का विकास नहीं हुआ है, (अर्थात् अभी कली पुष्प नहीं बन पायी है।) अतः हे भ्रमर ! तुम अभी ही (इस अविकसित) कली से बँध गये हो तो आगे (जब यह कली विकसित होकर पुष्प में परिवर्तित हो जायेगी, पूर्णयौवना होगी) तुम्हारा क्या हाल (स्थिति , दशा) होगा।

नायिका वर्णन

पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास ।

नितप्रति पून्यौई रहै आनन ओप उजास।।

शब्दार्थः पत्रा = तिथि- पत्र, पचांग। **तिथि** = दिनांक, दिन। **पाइयै** = पाना, प्राप्त करना। वा = उसके। **चहुँ पास** = चारो ओर। **नितप्रति** = प्रतिदिन। **पून्यौं** = पूर्णिमा, पूरा चांद। **आनन** = मुख। **उजास** = उजाला।

प्रसंगः दूती, सखी, नायक अथवा कवि ने अत्युक्तिपूर्ण ढ़ंग से नायिका के मुख के सौन्दर्य की प्रशंसा की है।

व्याख्याः (तिथि जानने के दो साधन हैं – एक तिथि-पत्र या पंचांग और दूसरा चन्द्रमा का प्रकाश।) किन्तु इस दोहे में कहा गया है कि उस (वा) घर (जहाँ वह सुन्दर स्त्री रहती है) के चारों तरफ (चँहु पास) तिथि सिर्फ पत्रा से ही पायी (जानी) जा सकती है (अर्थात पत्रा देखकर ही पता लगाया जा सकता है कि आज कौन सी तिथि है, क्योंकि उस स्त्री का मुख हमेश पूर्णिमा के चांद की तरह प्रकाशित , चमकता रहता है, अतः) नित्य प्रति वहां मुख की चमक के प्रकाश के कारण(आनन ओप जास) पूर्णिमा ही बनी रहती है अर्थात् प्रकाश देखकर प्रत्येक रात को पूर्णिमा की रात ही समझा जाता है।

रससिंगार- मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।

अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु , कौन।।

शब्दार्थः रससिंगार मंजनु किए = श्रृंगार रस में नहाये या डूबे हुए। **कंजनु** = कमल। **भंजनु** = भंग, पराजय। **अंजनु रंजनु हूँ बिना** = अंजन रंगने (लगाने) के बिना। **खंनजु** = खंजन पक्षी , जो अपनी चंचलता के लिए प्रसिद्ध है। **गंजनु** = तिरस्कार। **नैन** = आंख।

प्रसंगः नायक , सखी , दूती या कवि द्वारा स्त्री की सहज और सुन्दर आंखों की स्वाभाविक प्रशंसा की गई है।

व्याख्याः श्रृंगार रस में नहायी हुई या डूबी हुई आँख कमल की सुन्दरता को भी पराजित कर रहीं हैं (भंग कर रही हैं)। अपनी शोभा के लिए किसी बाहरी संसाधन (साधन) की आवश्यकता न समझने वाली सुन्दर स्त्री ने अंजन तक नहीं लगाया है। बिना अंजन के (इस सुन्दरी के) ये नेत्र सुन्दरता और लीलायुक्त चंचलता में खंजन पक्षी का गर्व भंग करने (लज्जित करने) वाले हैं।

विरह

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात।

कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात।।

शब्दर्थः कागद = कागज। **सँदेसु** = संदेश। **लजात** = संकोच। **हियौ** = हृदय।

प्रसंगः प्रिय के वियोग में तड़प रही विरहिणी प्रवासी को किसी भी भंति अपना हाल नहीं बता पाती है। वह न तो संदेश भेज पाती है और न उसे पत्र लिख पाती है। अपने विरही हृदय के हाल के लिए प्रिय के हृदय को सहभोक्ता बनाकर कहती है कि वही सब कुछ बता देगा।

व्याख्याः विरहिणी कहती है कि अपना हाल कागज पर लिखते नहीं बनता (अर्थात लिख नहीं पाती, विरह के कारण लिखने की स्थिति में नहीं है) और मौखिक सन्देश कहते हुए उसे संकोच हो रहा है (लेकिन मेरा प्रेम सन्देश अनकहा नहीं रह जायेगा, मुझे पूरा भरोसा है कि) तुम्हारा हृदय ही मेरे हृदय की सारी बातें कह देगा। इस दोहे में प्रेम की बहुत ही स्वाभाविक एवं मार्मिक स्थिति का वर्णन किया गया है।

3.7 सारांश

बिहारी रीतिकाल के सर्वप्रिय कवि होने के साथ-साथ प्रतिनिधि कवि भी हैं । बिहारी की यह लोकप्रियता और काव्यगत प्रतिनिधित्व उनकी काव्यगत क्षमताओं और उनकी विशिष्ट प्रतिभा के कारण है। बिहारी का एक मात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है, जिस पर अब तक लगभग पचास से अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं। बिहारी की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण है उनके काव्य में कला और भाव का बहुत ही सुन्दर और संतुलित समन्वय । कहीं भी भाव और कला एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते बल्कि एक दूसरे के सहयोगी बन कर आते हैं । भाव और कला का ऐसा सुन्दर सम्बन्ध हिंदी साहित्य में तुलसीदास के अलावा अन्यत्र दुर्लभ है। दो पंक्तियों के दोहे में भाव का इतना सर्वोत्तम स्वरूप प्रस्तुत कर देना बिहारी की कलात्मक सफलता है। इसलिए कहा गया है कि बिहारी के दोहे नावक यानी शिकारी के बाणों की तरह हैं जोकि आकार में छोटे होते हुए भी लक्ष्य को गहराई से बोध देते हैं।

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगैं घाव करे गंभीर ।।

6.6 अपनी प्रगति जांचिए

1. मैथिलीशरण गुप्त का जन्म कब हुआ ?
(i) 1882
(ii) 1884
(iii) 1886
(iv) 1888

2. मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि की उपाधि किसने प्रदान की थी?
(i) महावीर प्रसाद द्विवेदी
(ii) हजारी प्रसाद द्विवेदी
(iii) महात्मा गांधी
(iv) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

3. बिहारी किस काल के कवि हैं ?
(i) आदिकाल
(ii) भक्तिकाल
(iii)रीतिकाल
(iv) आधुनिक काल

4. बिहारी किस राजा के दरबारी कवि थे ?
(i) राजा जयसिंह

3.8 मुख्य शब्दावली

गिर – पर्वत

उत्कर्ष – समृद्धि, श्रेष्ठता

भू – पृथ्वी

लजात – संकोच

परागु – पराग (फूलों में मौजूद कण)

उजास – उजाला

अपार – अनन्त

3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर :

1. 1886
2. महात्मा गांधी
3. रीतिकाल
4. राजा जयसिंह
5. मैथिलीशरण गुप्त

3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

निम्न पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए :

1. भोर ते साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
   साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति ।
2. जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
   मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।
3. यह पुण्यभूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी 'आर्य' हैं,

विद्या, कला-कौशल सबके जो प्रथम आचार्य हैं।
सन्तान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े,
पर चिह्न उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े ।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. बिहारी की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।
2. राष्ट्र कवि के रूप में मैथिलीशरण गुप्त का मूल्यांकन कीजिए ।
3. मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएं बताइए ।
4. बिहारी के काव्य की समीक्षा कीजिए ।

3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. संसार चन्द्र - बिहारी संक्षिप्त
2. 'बिहारी' : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, संजय बुक सेंटर, वाराणसी ।

इकाई 7 : व्याकरण

इकाई की रूपरेखा

7.0 परिचय
7.1 इकाई के उद्देश्य
7.2 लिंग
7.3 कारक
7.4 वचन
7.5 काल
7.6 वाक्य शुद्धि
7.7 शब्द-अर्थ सम्बन्ध

7.8 विलोम शब्द
7.9 पर्यायवाची शब्द
7.10 मुहावरा
7.11 लोकोक्तियाँ (कहावतें)
7.12 सारांश
7.13 मुख्य शब्दावली
7.14 'अपनी प्रगति जाँचिये' के उत्तर
7.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
7.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

व्याकरण शब्द वि+आ+कृ-धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से बना है | जिसका अर्थ है "व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन" अर्थात् इसके द्वारा शब्दार्थ सम्बन्ध की विवेचना होती है| व्याकरण की सहायता से हम शब्द रचना, वाक्य रचना तथा भाषा व्यवस्था सम्बन्धी नियमों का ज्ञान प्राप्त करते हैं | वैयाकरणों ने भारतीय व्याकरण परंपरा में उदाहरण एवं नियम दोनों को ही व्याकरण माना है| 'लक्ष्य लक्षणे व्याकरणम्' अर्थात 'शब्द' या 'पद' आदि 'लक्ष्य' कहलाते हैं उनके स्वरूप को स्पष्ट करने वाले नियम 'लक्षण' कहलाते हैं | 'लक्षण' या उदाहरण भाषा में विद्यमान हैं | इस विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि भाषा के स्वरूप अथवा भाषा की प्रकृति को स्पष्ट करने वाले नियम व्याकरण कहलाते हैं | ये नियम या व्याकरण शब्दों या भाषा का निर्माण नहीं करते अपितु उनके स्वरूप या प्रकृति को स्पष्ट करते हैं तथा उन्हें अपना स्वरूप अव्यवस्थित रूप से बदलने या बिगाड़ने से रोकते हैं | इसीलिए महान वैयाकरण और भाषा-विदों ने व्याकरण को शब्दों का अनुशासन भी कहा है|

व्याकरण भाषा के शब्दों को गढ़ता नहीं है बल्कि उसके शुद्ध रूप की रक्षा करता है| दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व पतंजलि ने इसको अपनी प्रसिद्ध कृति 'महाभाष्य' लिखा - "जैसे लोग कुम्हार के घर जा कर कहते हैं कि मेरे घर में मांगलिक कार्य है अतः तुम मेरे लिए 'इतने' घड़े बनाकर देना, ऐसे कोई भी आदमी वैयाकरण के पास जाकर नहीं कहता

कि मुझे शब्दों की आवश्यकता है; तुम मेरे लिए इतने शब्दों की रचना करके रखना| शब्द तो भाषा में स्वतः विद्यमान होते हैं व्याकरण उनको अनुशासित एवं नियमबद्ध करता है |"

मनुष्य बचपन से ही अनुकरण द्वारा बिना व्याकरण जाने भाषा का व्यवहार सीखता है| किन्तु व्याकरण ज्ञान से भाषा के शुद्ध, परिष्कृत एवं मानक रूप को जानकर भविष्य में वह आत्मविश्वास के साथ भाषा प्रयोग में दक्ष हो जाता है | प्रत्येक भाषा के अपने नियम होते हैं और वे नियम उस भाषा को शुद्ध बोलना और लिखना सिखाते हैं इन्ही नियमों का अध्ययन व्याकरण के अंतर्गत किया जाता है | व्याकरण भाषा को विशुद्ध रूप से बोलने लिखने तथा समझने के लिए व्यवस्थित नियमों एवं पद्धतियों का विधान करने वाला शास्त्र है | व्यवस्थित नियमों एवं पद्धतियों के आधार पर ही किसी भी भाषा के शुद्ध एवं अशुद्ध रूप को निर्धारित किया जाता है | व्याकरण के माध्यम से किसी भी भाषा के उच्चारण, लेखन और पठन-पाठन के शुद्ध रूप प्राप्त होते हैं | व्याकरण भाषा के सभी स्वरूपों को व्यवस्थित करने का कार्य भी करता है जिससे वर्ण-विचार के अंतर्गत ध्वनियों और वर्णों ; शब्द-विचार के अंतर्गत शब्दों के विविध पक्षों सम्बन्धी नियमों और वाक्य विचार के अंतर्गत वाक्य सम्बन्धी विभिन्न स्थितियों एवं छंद विचार में साहित्य सृजन के अनुशासन पर विचार करता है साथ ही भाषा के अंग-प्रत्यंग का विश्लेषण एवं विवेचन भी करता है|

इस इकाई में लिंग, कारक, वचन, काल, वाक्य-शुद्धि, शब्द-अर्थ सम्बन्ध, विलोम एवं पर्यायवाची शब्दों पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है | यहाँ जो उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं उससे विषय को समझना और आसान हो जायेगा | लोकोक्तियों और मुहावरों के अध्ययन से अपनी बात को आकर्षक एवं रोचक ढंग से रखने में आप अपने को अत्यंत सहज महसूस करेंगे | कहावतों (लोकोक्तियाँ) मुहावरों के अंतर को सरलता से समझने में आप सफल होंगे | जिसके माध्यम से आप अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषणीयता हेतु चारुता उत्पन्न करने में सक्षम हो सकेंगे |

4.1 इकाई के उद्देश्य

* व्याकरण के अध्ययन से हिंदी भाषा में लिंग विचार को समझ सकेंगे |
* हिंदी भाषा में कारक की महत्ता को जान पाएंगे |
* भाषा में वचन का सही प्रयोग कर पाएंगे |

* काल को विधिवत परिभाषित कर पाएंगे |
* व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध शब्दों तथा वाक्यों को शुद्ध कर पाएंगे |
* विलोम शब्द को ज्ञात करने में सफल हो पाएंगे |
* हिंदी के पर्यायवाची शब्दों से परिचित हो पाएंगे |
* भाषा को आकर्षक एवं रोचक बनाने हेतु मुहावरे और लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग करने में सक्षम हो सकेंगे |

4.2 लिंग

संस्कृत शब्द लिंग का अर्थ है - चिह्न । 'लिंग' शब्द के उस चिह्न को कहते हैं, जिससे वस्तु के पुरुष या स्त्री होने की कल्पना हो। लिंग के कारण संज्ञा, विशेषण और क्रिया के रूप में परिवर्तन होता है। हिन्दी में लिंग दो प्रकार के होते हैं - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। संस्कृत में एक और लिंग है जिसे नपुंसक लिंग कहते है। इस लिंग को हिन्दी में स्वीकार नहीं किया गया।

1. **पुल्लिंग :** पुल्लिंग संज्ञा के उस रूप को कहते हैं, जिससे उसके पुरुष होने का ज्ञान हो। जैसे - राम, श्याम, लक्ष्मण, घोड़ा, हाथी आदि।
2. **स्त्रीलिंग :** 'स्त्रीलिंग' संज्ञा के उस रूप को कहते हैं, जिससे उसके स्त्री होने का ज्ञान हो। जैसे- लड़की, बकरी, गाय, धरती आदि।

लिंग निर्णय :-

लिंग का निर्णय हिन्दी में मुश्किल कार्य है। इसका कोई स्थायी और निश्चित नियम नहीं है। हिन्दी में लिंग का निर्णय मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है - 1) शब्द के अर्थ के आधार पर 2) उसके रूप के आधार पर

प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के आधार पर और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप और व्यवहार के आधार पर तय होता है।

प्राणिवाचक शब्दों के लिंग के निर्णय :

जिन प्राणिवाचक संज्ञाओं से जोड़ों का ज्ञान होता है, उनमें पुरुष बोधक संज्ञाएँ पुल्लिंग और स्त्री बोधक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं। पुरुष, घोड़ा, मोर, शेर आदि पुलिंग हैं तो स्त्री, घोड़ी, गाय, मोरनी, शेरनी आदि स्त्रीलिंग हैं।

मनुष्य से भिन्न प्राणिवाचक संज्ञाओं से दोनों जातियों का बोध होता है। व्यवहार के अनुसार वे या तो हमेशा पुल्लिंग होते हैं या फिर स्त्रीलिंग। जैसे - पक्षी, चीता, केंचुआ, खटमल, भेड़िया आदि पुलिंग हैं तो कोयल, गिलहरी, तितली, चील, आदि स्त्रीलिंग।

अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग का निर्णय :

अप्राणिवाचक को जानना कठिन होता है। इसका लिंग व्यवहार के आधार पर तय होता है। अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ और रूप से जानना कठिन है क्योंकि एक ही अर्थ के अलग-अलग शब्द, अलग-अलग लिंग के हैं। जैसे - नेत्र पुल्लिंग है तो आँख स्त्रीलिंग। देखा जा सकता है दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है किन्तु लिंग में भिन्नता है ठीक उसी प्रकार एक ही अंत के शब्दों में भी लिंग की भिन्नता होती है, जैसे - आलू पुलिंग है तो बालू स्त्रीलिंग।

कुछ अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार पुल्लिंग होते हैं। जैसे -

- शरीर के अवययों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे - मुँह, कान, हाथ, पाँव आदि।
- धातुओं के नाम जैसे - सोना, पीतल, लोहा, टीन, आदि।
- पेड़ों के नाम जैसे - पीपल, शीशम, अशोक आदि।
- अनाजों के नाम जैसे - गेहूँ, चावल, मटर, चना आदि।
- ग्रहों के नाम जैसे - सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि।

  अपवाद - पृथ्वी।

कुछ अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे -

- नदियों के नाम जैसे - गंगा, यमुना, नर्मदा आदि।

  अपवाद - सिंधु, ब्रह्मपुत्र।
- तिथियों के नाम जैसे - तीज, चौध आदि।
- भोजनों के नाम जैसे - पूरी, खीर, रोटी, खिंचड़ी आदि।

  अपवाद - भात, हलुआ आदि।

संज्ञा के आधार पर लिंग-निर्णय :

संज्ञा के आधार पर भी हिन्दी में लिंग निर्णय होते है। इसके बहुत अपवाद भी होते है। हिन्दी भाषा में संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी के शब्द भी होते हैं जिनके लिए नियम में भिन्नता होती है। संज्ञा के आधार पर पुलिंग और स्त्रीलिंग का निर्णय करने के कुछ नियम अग्रांकित प्रस्तुत है -

पुल्लिंग शब्द :

1) संस्कृत के 'अ' प्रत्ययांत शब्द प्रायः पुल्लिंग होते हैं। जैसे - अध्याय, अनल, आकार, उपहार, उपाय, अन्याय आदि।
2) जिन संज्ञाओं के अंत मे 'त्र' हो। जैसे - गोत्र, नेत्र, चित्र, पात्र, मित्र, शास्त्र, क्षेत्र, चरित्र, अस्त्र, शस्त्र आदि।
3) जिन संज्ञाओं के अंत में 'ज' हो। जैसे - अनुज, जलज, सरोज, पिंडज आदि।
4) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में त्व, त्य, व, र्य हो। जैसे - महत्व, सतीत्व, कृत्य, नृत्य, गौरव, कार्य, धैर्य, माधुर्य आदि।
5) उर्दू भाषा के जिन शब्दों के अंत में 'आब', 'आर' या 'आन' हो। जैसे - गुलाब, हिसाब, बाजार, इनकार, मकान, समान आदि।

स्त्रीलिंग शब्द :

1) जिन शब्दों के अंत में 'आ' प्रत्यय हों, वे प्रायः हिन्दी में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं। जैसे - आज्ञा, कन्या, काया, कृपा, घटना, दवा, वेदना, विधा, याचना, संवेदना, सहायता, सीमा, सेना, सेवा, रक्षा, माया, विद्या आदि।
2) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में 'ता' हो, वे स्त्रीलिंग होती हैं। जैसे - गुरुता, जड़ता, पशुता, ममता, महत्ता, विनम्रता, एकता, समता, सुंदरता आदि।
3) ईकारान्त संज्ञाएँ। जैसे - नदी, चिट्ठी, टोपी आदि।

अपवाद - पानी, मोती, घी, दही आदि।

4) कृदंत की वे संज्ञाएँ जिनके अंत मे 'न' और 'अ' हो। जैसे - रहन, सहन, सूजन, पहचान, मार, समझ, चमक, पुकार, दौड़ आदि।

5) उर्दू के जिन शब्दों के अंत में 'श', 'त' और 'ह' हो। जैसे - कशिश, लाश, कीमत, दस्तखत, राह, सलाह आदि।

लिंग निर्णय की समस्या :

हिन्दी व्याकरण में जहाँ-जहाँ काठिन्य का आरोप किया गया है, उनमें लिंग का प्रथम स्थान है। लिंग निर्णय अभ्यास और स्मरण की अपेक्षा रखता है। अहिंदी भाषी लोगों के लिए लिंग चयन करना हमेशा से कठिन कार्य रहा है। उदाहरण के लिए अरुणाचल प्रदेश जैसे अहिन्दी राज्य को लें जहाँ लिंग निर्णय एक समस्या है। अरुणाचल के लोगों ने 'जाता है' और 'जाती है' के लिए 'जाएगा' शब्द प्रयोग करते हैं। यह शब्द पुरुष और स्त्री दोनों के लिए होता है। अरुणाचल में अरुणाचली व्यक्ति द्वारा इस तरह के शब्दों का प्रयोग करना गलत नहीं माना जाता।

4.3 कारक

संज्ञा अथवा सर्वनाम का वह रूप, जो वाक्य के अन्य शब्दों, विशेषतः क्रिया से अपना संबंध प्रकट करता है, 'कारक' कहा जाता है। प्रत्येक पूर्ण वाक्य में संज्ञाओं तथा सर्वनामों का मुख्य रूप से क्रियाओं के साथ और गौण रूप से आपस में भी संबंध रहता है। जैसे - 'राम ने रावण को मारा'। उपर्युक्त वाक्य में 'राम ने', 'रावण को' संज्ञाओं के रूपान्तरण हैं जिनके द्वारा इन संज्ञाओं का संबंध 'मारा' क्रिया के साथ सूचित होता है।

संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय कारक को सूचित करने के लिए लगता है उसे विभक्ति कहते हैं। ऊपर वाक्य में 'राम ने' और 'रावण को' कारक को सूचित करने के लिए 'ने' और 'को' प्रत्यय लगे हैं। अतः 'ने' और 'को' विभक्ति हैं।

कारक के भेद :

हिन्दी में आठ कारक हैं। इन कारकों के बोध के लिए प्रयुक्त होने वाले चिह्नों को विभक्ति कहते हैं। कारक चिह्नों को 'प्रत्यय' तथा 'परसर्ग' भी कहते हैं। कारक के निम्न लिखित आठ भेद हैं -

कारक	विभक्ति

कर्ता कारक (Nominative Case)	ने
कर्म कारक (Accusative Case)	को
करण कारक (Instrumental Case)	से
संप्रदान कारक (Dative Case)	को, के लिए
अपादान कारक (Ablative Case)	से
संबंध कारक (Genitive Case)	का, के, की
अधिकरण कारक (Locative Case)	में, पर
सम्बोधन कारक (Vocative Case)	हे, अजी, अहो, अरे

हिन्दी में विभक्तियों के प्रयोग के नियम :

1) विभक्तियों का प्रयोग शब्दों के बीच के संबंध को प्रकट करना होता है। जैसे ने, का, पर, से आदि।
2) संज्ञा या सर्वनाम के साथ विभक्ति आती है। जैसे - राम ने खाना खाया।
3) दो प्रकार से संज्ञा और सर्वनाम का जुड़ाव होता है। यह दो प्रकार हैं - विश्लिष्ट और संश्लिष्ट। जो विभक्ति संज्ञा के साथ आती है वो विश्लिष्ट है। वे संज्ञा से अलग रहती हैं, जैसे - राम ने, मोहन को। और जो सर्वनाम के साथ जुड़ जाती हैं वह संश्लिष्ट हैं। जैसे - तुमने, मैंने।

हिन्दी के कारक

- **कर्ता कारक :-** 'कर्ता' का अर्थ है करने वाला। जो कोई क्रिया करता है, उसे क्रिया का कर्ता कहते हैं। जैसे - 'राम पढ़ता है'। यहाँ पढ़ने वाला 'राम' है, अतः वह 'पढ़ना' क्रिया का कर्ता है।

'ने' चिन्ह का प्रयोग :

1) कर्तृवाच्य में बोलना, भूलना, लाना, खाना आदि कुछ सकर्मक क्रियाओं को छोड़कर अन्य सकर्मक क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, पूर्ण तथा संदिग्ध भूत में कर्ता के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे -

सामान्य भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी।

आसन्न भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी है।

पूर्ण भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी थी।

संदिग्ध भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी होगी।

2) जानना, लाना, पुकारना आदि के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग कभी होता है, कभी नहीं होता। जैसे - मैंने जाना - मैं जाना, मैंने पुकारा - मैं पुकारा।

3) अकर्मक क्रिया जब सकर्मक क्रिया हो जाती है, तब 'ने' का प्रयोग होता है। जैसे - उसने लड़ाई लड़ी।

4) जब संयुक्त क्रिया के दोनों खंड सकर्मक हों, तब 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - उसने खाना खा लिया।

5) संयुक्त क्रिया का यदि अंतिम खंड अकर्मक हो, तो 'ने' का प्रयोग नहीं होता। जैसे - मैं खा चुका।

6) संयुक्त क्रिया का अंतिम खंड यदि सकर्मक हो, तो 'ने' का प्रयोग होता है। जैसे - उसने रो दिया।

- **कर्म कारक :-** जिस वस्तु पर कर्ता की क्रिया का फल पड़े, उसे 'कर्म कारक' कहते हैं। जैसे - 'राम ने मोहन को पीटा'। इस वाक्य में करता राम के पीटने की क्रिया का फल मोहन पर पड़ता है, इसलिए यहाँ मोहन कर्म है। कर्म कारक का चिह्न 'को' है।

'को' चिन्ह का प्रयोग :

1) सकर्मक क्रिया का फल जिस पर पड़ता है, वह कर्म है और उसके बाद 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - माँ बच्चे को पढ़ाती है।

2) समय की सूचना देने में 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - आज चार बजे शाम को मंत्री जी का भाषण होगा।

3) अधिकारसूचक तथा व्यापारसूचक कर्तृवाचक कर्म के साथ 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे- मोहन को बुलाओ। गीता को पढ़ने दो।

4) मिलना, रुकना, होना, पढ़ना, जाना आदि क्रियाओं के साथ 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - मुझको जाना चाहिए, तुमको रुकना होगा, मुझे मिलना चाहिए आदि।
5) 'मारना' क्रिया का अर्थ जब 'पीटना' हो, तब तो कर्म के साथ 'को' चिह्न लगता है, किन्तु जब इसका अर्थ 'शिकार या हत्या करना' हो तो 'को' चिह्न नहीं लगता। जैसे- उसने चोर को पीटा। शिकारी ने हिरण मारा।
6) 'होना' क्रिया का प्रयोग यदि अस्तित्व के अर्थ में हो तो कर्म में 'को' के जगह 'के' चिह्न लगता है। जैसे - दशरथ के चार पुत्र हैं।

- **करण कारक :-** जो क्रिया की सिद्धि में साधन के रूप में काम आए, उसे 'करण कारक' कहते हैं। इसका चिह्न 'से' है। जैसे - 'तुम कलम से लिखे'। यहाँ लेखन क्रिया का साधन 'कलम' है, अतः इसे करण कारक कहेंगे। करण का 'से' चिह्न कहीं-कहीं लुप्त रहता है। जैसे - आँखों देखा, कानों सुना। अर्थात आँखों से देखना, कानों से सुना आदि।

'से' चिह्न का प्रयोग :

1) करण कारक में 'से' विभक्ति साधन के अर्थ की ओर संकेत करती है। जैसे - उसने पेंसिल से चित्र बनाया।
2) कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्ता के साथ 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - उससे रोटी खायी नहीं जाती।
3) प्रेरित कर्ता में 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - शिक्षक छात्रों से पढ़वाते हैं।
4) क्रिया करने की पद्धति में। जैसे - वह धीरे से बोला।
5) दिशावाचक शब्दों के योग में। जैसे - मैं पूरब से आया।
6) समय और स्थान की दूरी द्योतित करने में, जैसे - आज से चार दिन पहले की बात है।
7) वस्तु-स्थिति का ज्ञान कराने के लिए क्रियार्थक संज्ञाओं में। जैसे - पढ़ने से पुस्तक नीरस मालूम पड़ी।

- **संप्रदान कारक :-** जिसके लिए कुछ किया जाये या जिसे कुछ दिया जाये, उसे 'संप्रदान कारक' कहते हैं। इसके मुख्य चिह्न 'को' तथा 'के लिए' है। जैसे 'राम ने मोहन को आम दी'। इस वाक्य में मोहन संप्रदान है, क्योंकि आम उसे ही दी गयी है। इसी प्रकार 'कृष्ण ने राधा के लिए फल लाये'। इस वाक्य में राधा संप्रदान है, क्योंकि फल उसके लिए लाया गया।

द्रष्टव्य - कर्म और संप्रदान दोनों कारकों में 'को' विभक्ति का प्रयोग होता है, किन्तु दोनों के अर्थ भिन्न हैं। संप्रदान का 'को' अव्यय के स्थान पर या उसके अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि कर्म के 'को' का अर्थ से कोई संबंध नहीं।

- **अपादान कारक :-** जिससे कोई वस्तु अलग हो उसे 'अपादान कारक' कहते हैं। इसका चिह्न 'से' है। जैसे - 'पेड़ से पत्ता गिरा'। 'मोहन घर से आता है'। इन वाक्यों में 'पेड़' और 'घर' अपादान है, क्योंकि गिरते समय पत्ता पेड़ से अलग होता है और आते समय मोहन अपने घर से।

द्रष्टव्य - अपादान और करण दोनों कारकों में 'से' चिह्न है, किन्तु दोनों में अर्थ की दृष्टि से बहुत अंतर है। करण का 'से' साधन का अर्थ प्रकट करता है, जबकि अपादान का 'से' अलग होने का अर्थ प्रकट करता है ।

- **संबंध कारक :-** जिस संज्ञा या सर्वनाम से किसी दूसरे शब्द का संबंध का पता चले, उसे 'संबंध कारक' कहते हैं। इसकी विभक्त 'का', 'के', 'की' है। जैसे - उसका घर आ गया। राम के पास चार कलम है। मोहन की गाय चरती है।

  'उसका घर' से घर का संबंध उससे है। अतः 'उसका' को संबंध कारक कहते हैं।

द्रष्टव्य - अन्य कारकों का संबंध मुख्य रूप से क्रिया के साथ होता है और साधारण रूप से अन्य संज्ञाओं के साथ, परंतु संबंध कारक का संबंध मुख्य रूप से संज्ञाओं के साथ ही होता है। यही कारण है, इस कारक का लिंग-वचन संबंधी के अनुसार होता है, जबकि अन्य कारकों के साथ ऐसी बात नहीं है।

- **अधिकरण कारक :-** जिससे क्रिया के आधार का ज्ञान होता है, उसे 'अधिकरण कारक' कहते हैं। जैसे - 'कौआ पेड़ पर बैठा है'। इस वाक्य में 'पेड़' अधिकरण कारक है। वह कौए के बैठने के लिए आधार का काम करता है।

'में' तथा 'पर' चिह्न का प्रयोग :

1) आधार के अर्थ में 'में' तथा 'पर' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - घर में मोहन है। पेड़ पर पक्षी है।
2) समय, दूरी तथा अवधि के अर्थ में। जैसे -आठ दिनो में आऊँगा। यहाँ से एक मील पर बाज़ार है।

➢ **सम्बोधन कारक :-** संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारने या सचेत करने आदि का भाव मालूम हो, उसे 'सम्बोधन कारक' कहते हैं। इसके विभक्ति 'हे', 'अरे', 'अजी' है। जैसे - अरे, श्याम तुम्हें क्या हो गया? इस वाक्य में 'अरे श्याम' सम्बोधन कारक है, क्योंकि इस पद द्वारा श्याम को पुकारा जा रहा है।

4.4 वचन

'वचन' का अर्थ है 'बोली', किन्तु व्याकरण में 'वचन' का अर्थ है 'संख्या'। जैसे - 'लड़का आता है' और 'लड़के आते हैं' इन दोनों वाक्यों में पहली बार 'लड़का' शब्द का एकवचन में प्रयोग हुआ है और दूसरी बार 'लड़के' का बहुवचन में। पहले वाक्य में 'लड़का' शब्द से ज्ञात होता है कि कोई एक ही लड़का है, परंतु दूसरे वाक्य में 'लड़के' से लगता है कि आनेवाले लड़के कई हैं।

हिन्दी में वचन दो हैं - एकवचन और बहुवचन।

एकवचन (Singular Number) - जो एक संज्ञा का ज्ञान कराता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे - लड़का, गाय, लड़की, कपड़ा, नदी आदि।

बहुवचन (Plural Number) - जो एक से अधिक संख्या का ज्ञान कराता है, उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे - लड़के, गाये, लड़कियाँ, कपड़े, नदियाँ आदि।

बहुवचन के प्रयोगों को दो भागों में बाँटा गया है - विभक्तिसहित और विभक्तिरहित। अर्थात् वाक्य में कभी विभक्ति का प्रयोग होता है कभी नहीं। जैसे - 'बालक खेलते हैं' वाक्य में 'बालक' संज्ञा के साथ किसी भी विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है, अतः यह विभक्तिरहित संज्ञा है। जबकि 'बालक ने कलम तोड़ी' वाक्य में 'बालक' संज्ञा के साथ 'ने' विभक्ति का प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ 'बालक' विभक्तिसहित है।

विभक्तिरहित संज्ञाओं के बहुवचन के नियम :

1) विभक्ति- चिह्न -रहित रहने पर पुलिंग शब्दों का एकवचन और बहुवचन समान होता है - अकारांत - बालक, घर, नर आदि।

इकारांत - ऋषि, कवि, मुनि आदि।

ईकारांत - भाई, स्वामी, सिपाही आदि।

उकारांत - गुरु, साधु, कृपालु आदि।

ऊकारांत - डाकू, भालू, आलू आदि।

एकारांत - दूबे, चौबे आदि।

ओकारांत - कोदो, रासो आदि।

औकारांत - जौ आदि।

2) विभक्ति-चिह्न-रहित आकारांत संस्कृत पुलिंग शब्द एकवचन और बहुवचन में समान रहते हैं। जैसे - कर्ता, दाता, राजा आदि।

3) विभक्ति-चिह्न-रहित संबंध वाचक, उपनामवाचक और प्रतिष्ठावाचक आकारांत पुलिंग शब्दों के रूप भी दोनों वचनों में समान होते हैं। जैसे - मामा, काका, भैया आदि।

4) अकारांत और आकारांत स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञा शब्दों के अंत में 'एँ' लगाने से बहुवचन बनाता है। जैसे - गाय - गायें, बहन - बहनें आदि।

5) इकारांत या ईकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अंतिम 'ई' को ह्रस्व करके उसमें 'याँ' जोड़ने अर्थात अंतिम 'इ' या 'ई' को 'इयाँ' कर देने से बहुवचन बन जाता है। जैसे - चिड़िया - चिड़ियाँ, गुड़िया - गुड़ियाँ आदि।

6) अ-आ-इ-ई के अलावा अन्य मात्राओं से अंत होने वाली स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अंत में 'एँ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। अंतिम स्वर दीर्घ 'ऊ' होने पर उसको ह्रस्व 'उ' बनाकर उसमे 'एँ' जोड़ देते हैं। जैसे - वस्तु - वस्तुएँ, बहू - बहुएँ आदि।

7) संज्ञा के पुलिंग अथवा स्त्रीलिंग रूपों में बहुवचन का बोध प्रायः 'गण', 'वर्ग', 'लोग' आदि लगाकर कराया जाता है। जैसे - छात्र-छात्रगण, आप-आपलोग आदि।

विभक्तिसहित संज्ञाओं के बहुवचन के नियम :

1) आकारांत एवं उकारांत संस्कृत शब्दों तथा ऊकारांत और औकारांत हिन्दी शब्दों के अंत में 'ओ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे - माता-माताओं, वधू-वधुओं आदि।

2) अकारांत और एकारांत शब्दों के अंतिम आ, अ, ए के स्थान पर 'ओं' रखकर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे - बालक-बालकों आदि।

3) इकारांत तथा ईकारांत शब्दों के अंत में 'यों' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे - निधि-निधियों, धनी-धनियों आदि।

4.5 काल

'काल' क्रिया का वह रूप है, जिससे उसके करने या होने के समय तथा पूर्णता अथवा अपूर्णता का ज्ञान होता है।

काल के भेद :

काल के तीन भेद हैं - 1) भूतकाल (Past Tense), 2) भविष्य काल (Future Tense) तथा 3) वर्तमान काल (Present Tense)।

- **भूतकाल -**

'भूतकाल' क्रिया का वह रूप है, जिससे बीते हुए समय - भूतकाल - में क्रिया के होने का ज्ञान हो। जैसे - 'राम ने खाना खाया था'।

भूतकाल के छह भेद होते हैं -

1) सामान्य भूत (Past Indefinite)
2) आसन्न भूत (Present Perfect)
3) पूर्ण भूत (Past Perfect)
4) अपूर्ण भूत (Past imperfect or Past Continuous)
5) संदिग्ध भूत (Doubtful Past)
6) हेतुहेतुमद् भूत (Conditional Past)

1) सामान्य भूत :- 'सामान्य भूत' क्रिया के उस रूप को कहते हैं, जिससे भूतकाल में क्रिया के किसी निश्चित या विशेष काल में होने की सूचना नहीं मिले। इस क्रिया-रूप से भूतकाल की सामान्य अवस्था का ज्ञान होता है। जैसे - 'राम ने आम खाया', 'मोहन चला गया'। इन वाक्यों में 'खाया' तथा 'चला गया' क्रिया-रूपों से भूतकाल की सामान्य अवस्था का ज्ञान होता है, क्रिया की पूर्णता या अपूर्णता की कोई विशेष सूचना नहीं मिलती है।

2)आसन्न भूत :- जिस काल से यह ज्ञात होता है कि क्रिया कुछ ही देर पहले समाप्त हुई है, उसे 'आसन्न भूत' कहते हैं। जैसे - 'उसने खाया है', गणेश ने देखा है'। इन वाक्यों में 'खाया है' तथा 'देखा है' से ज्ञात होता है कि क्रिया कुछ ही देर पहले समाप्त हुई है।

3)पूर्ण भूत :- जिस काल से यह ज्ञात हो कि क्रिया बहुत पहले समाप्त हो गयी उसे 'पूर्ण भूत' कहते हैं। जैसे - 'मनोज गया था'। इस वाक्य से यह ज्ञात होता है कि क्रिया बहुत पहले समाप्त हो चुकी है।

4)अपूर्ण भूत :- जिस काल से यह ज्ञात हो कि क्रिया भूतकाल में प्रारम्भ हुई, परंतु उसकी पूर्णता की सूचना नहीं मिले उसे 'अपूर्ण भूत' कहते हैं। जैसे - 'राम खा रहा था'। 'खा रहा था' से यह ज्ञात होता है कि क्रिया का संबंध भूतकाल से है, परंतु उसकी पूर्णता कि सूचना नहीं मिलती।

5)संदिग्ध भूत :- जिस काल से भूतकाल में क्रिया के होने में संदेह मालूम पड़े उसे 'संदिग्ध भूत' कहते हैं। जैसे - 'राम ने खाना खाया होगा'। इस वाक्य में 'खाया होगा' से 'खाना' क्रिया के भूतकाल में होने में संदेह मालूम पड़ता है, अतः यहाँ संदिग्ध भूत है।

6)हेतुहेतुमद्भूत :- जिस काल से यह ज्ञात हो कि कोई हेतु या कारण रहा होता तो क्रिया भूतकाल में हूई होती उसे 'हेतुहेतुमद्भूत' कहते हैं। जैसे - 'राम आता तो मैं जाता'।

- **भविष्य काल -**

जिस काल से आने वाले समय से होने वाली क्रिया की सूचना मिले, उसे 'भविष्य काल' कहते हैं। जैसे - 'राम आएगा'। इस वाक्य में 'आएगा' से ज्ञात होता है कि आने की क्रिया आने वाले समय में होगी, अतः इसे भविष्य का रूप मानेंगे।

भविष्य काल के तीन भेद हैं -

1)सामान्य भविष्य (Future Indefinite)

2)संभाव्य भविष्य (Future Conjunctive)

3)हेतुहेतुमद् भविष्य (Conditional Future)

1)सामान्य भविष्य :- जिस काल से भविष्य में होनेवाली क्रिया की काल-संबंधी सामान्य अवस्था का ज्ञान हो, उसे 'सामान्य भविष्य' कहते हैं। जैसे - 'मैं जाऊँगा'। इस वाक्य में

'जाऊँगा' से भविष्य काल के सामान्य रूप का ज्ञान होता है। इनमें किसी तरह की संभावना या शर्त का संकेत नहीं मिलता।

2)संभाव्य भविष्य :- जिससे किसी क्रिया के भविष्य में होने की संभावना प्रकट हो उसे 'संभाव्य भविष्य' कहते हैं। जैसे - 'हो सकता है, वह कल घर आए'।

3)हेतुहेतुमद् भविष्य :- भविष्य काल का वह रूप, जिसमें किसी क्रिया का होना किसी कारण की उपस्थिती पर निर्भर करता है, 'हेतुहेतुमद् भविष्य' कहलाता है। जैसे - 'राहुल पढ़े, तो विद्वान हो'। यहाँ राहुल का विद्वान होना उसके 'पढ़ने' पर निर्भर करता है।

- **वर्तमान काल -**

वर्तमान काल क्रिया का वह रूप है, जिससे बीत रहे (वर्तमान) समय में किसी क्रिया के होने का ज्ञान हो। जैसे - 'राम खा रहा है'।

वर्तमान काल के तीन भेद हैं -

1) सामान्य वर्तमान (Present Indefinite)
2) तात्कालिक वर्तमान (Present Continuous)
3) संदिग्ध वर्तमान (Doubtful Present)

1) सामान्य वर्तमान :- यह वर्तमान काल का वह रूप है, जिससे किसी क्रिया के वर्तमान काल में होने की सामान्य अवस्था का ज्ञान होता है। जैसे - 'राम पढ़ता है'। इस वाक्य में 'पढ़ता है' में पढ़ने की क्रिया के वर्तमान काल में होने का बोध तो होता है, लेकिन वर्तमान की किसी अवस्था विशेष की जानकारी नहीं मिल पाती।

2) तात्कालिक वर्तमान :- वर्तमान काल के जिस रूप से यह ज्ञान होता है कि क्रिया चल रही है, उसे 'तात्कालिक वर्तमान' कहते हैं। जैसे - 'तुम कहाँ जा रहे हो?' यहाँ 'जा रहे हो' से ज्ञात होता है कि जिस व्यक्ति से प्रश्न किया जा रहा है, उसके जाने की क्रिया चल रही है।

3)संदिग्ध वर्तमान :- जिस काल से क्रिया के वर्तमान काल में होने में संदेह मालूम पड़ता हो, अर्थात क्रिया हो रही है या नहीं, यह संदेह बना रहे, उसे 'संदिग्ध वर्तमान' कहते हैं। जैसे - 'राकेश आता होगा'। यहाँ 'आना' क्रिया में संदेह मालूम पड़ता है।

7.6 वाक्य शुद्धि

वाक्य भाषा की अत्यंत महत्वपूर्ण इकाई है। अतएव, लिखने या बोलने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे द्वारा जो कुछ लिखा या कहा जाए, वह बिलकुल स्पष्ट सार्थक व्याकरण की दृष्टि से शुध्द हो। वाक्यों के विभिन्न अंग यथास्थान होने चाहिए। साथ ही विराम- चिह्नों का भी उचित जगहों पर प्रयोग होना चाहिए।

वर्तनी एवं वाक्य शुद्धिकरण -

- वर्णमाला के किसी वर्ग के पंचम अक्षर के बाद उसी वर्ग के प्रथम चारों वर्णों में से कोई वर्ण हो तो पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार (.) का प्रयोग होना चाहिए। जैसे - कंकर, चंचल, गंगा, अंत आदि। किन्तु जब नासिक्य व्यंजन (वर्ग का पंचम वर्ण) उसी वर्ग के प्रथम चार वर्णों के अलावा अन्य किसी वर्ण के पहले आता है तो उसके साथ उस पंचम वर्ण का आधा रूप ही लिखा जाना चाहिए। जैसे - अन्य, जन्म, निम्न, किन्तु, परन्तु आदि । अंय, जंम, निंन, किंतु, परंतु, लिखना अशुद्ध है।
- अ, ऊ एवं आ मात्रा वाले वर्णों के साथ अनुनासिक चिन्ह को इसी चन्द्रबिन्दु के रूप में लिखा जाना चाहिए। जैसे - आँख, हँस, काँच, साँप, हूँ आदि। परन्तु अन्य मात्राओं के साथ अनुनासिक चिन्ह को अनुस्वार के रूप में लिखा जाता है। जैसे - मैंने, खींचना, दायें, सिंचाई आदि।
- अंग्रेजी से हिन्दी में आए जिन शब्दों में आधे 'ओ' (आ एवं ओ के बीच की ध्वनि 'ऑ') की ध्वनि प्रयोग होता है, उनके ऊपर अर्ध चन्द्रबिन्दु लगानी चाहिए। जैसे - बॉल, कॉलेज, डॉक्टर, हॉल आदि।
- हिन्दी में विभक्ति चिन्ह सर्वनामों के अलावा शेष सभी शब्दों से अलग लिखे जाते हैं जैसे -
  गीता ने श्याम को कहा।
  मोहन को रुपये दे दो।
- संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाओं को अलग-अलग लिखा जाना चाहिए। जैसे - जाया करता है, पढ़ा करता है, खा सकते हो, जा सकते हो।
- सर्वनाम के साथ दो विभक्ति चिन्ह होने पर पहला विभक्ति चिन्ह सर्वनाम में मिलाकर लिखा जाएगा एवं दूसरा अलग लिखा जाएगा। जैसे -

आपके लिए, उसके लिए, इनमें से आदि।

सर्वनाम और उसकी विभक्ति के बीच 'ही' अथवा 'तक' आदि अव्यय हों तो विभक्ति सर्वनाम से अलग लिखी जायेगी। जैसे -

आप ही के लिए, आप तक को, उस ही के लिए आदि।

वर्तनी की अशुद्धियों के प्रमुख कारण निम्न हैं -

- उच्चारण दोष कई क्षेत्रों व भाषाओं में, स-श, व-ब, न-ण आदि वर्णों में अर्थभेद नहीं किया जाता तथा इनके स्थान पर एक ही वर्ण स, ब या न बोला जाता है जबकि हिन्दी में इन वर्णों की अलग-अलग अर्थ-भेदक ध्वनियों हैं। अतः उच्चारण दोष के कारण इनके लेखन में अशुध्दि हो जाती है। जैसे -

अशुद्ध	**शुद्ध**
कोसिस	कोशिश
सीदा	सीधा
सबी	सभी
सोर	शोर
अरम	आराम
पाणी	पानी
बबाल	बवाल
पाठसाला	पाठशाला
शब	शव
निपुन	निपुण
गुन	गुण

जहाँ 'श' एवं 'स' एक साथ प्रयुक्त होते हैं वहाँ 'श' पहले आयेगा एवं 'स' उसके बाद। जैसे- शासन, प्रशंसा, शासक आदि। इसी प्रकार 'श' एवं 'ष' एक साथ आने पर पहले 'श' आएगा फिर 'ष'। जैसे - शोषण, शेष, विशेष आदि।

- कोई, भाई, मिठाई, कई आदि शब्दों को कोयी, भायी, मिठायी आदि लिखना अशुध्द है। इसी प्रकार अनुयायी, स्थायी, वाजपेयी शब्दों को अनुयाई, स्थाई, वाजपेई आदि रूप में लिखना भी अशुध्द होता है।

- चिह्नों के प्रयोग सही जगह पर न करने पर भी अशुद्धियाँ हो जाती हैं और अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जैसा -

रोको, मत जाने दो।

रोको मत, जाने दो।

हिन्दी में अशुद्धियों के विविध प्रकार -

1. भाषा (अक्षर या मात्रा) संबंधी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	**शुद्ध**
बृटिश	ब्रिटिश
स्त्रीयाँ	स्त्रियाँ
रिषी	ऋषि
सामर्थ	सामर्थ्य
एकत्रित	एकत्र
निरिक्षण	निरीक्षण
हिंदु	हिंदु
संसारिक	सांसारिक
दम्पति	दम्पती
गरीमा	गरिमा
गुरू	गुरु
अज्ञानता	अज्ञान

2. लिंग संबंधी अशुद्धियाँ :

1) दही बड़ी अच्छी है। (बड़ा अच्छा)

2) आपने बड़ी अनुग्रह की। (बड़ा, किया)

3) मेरा कमीज उतार लाओ। (मेरी)

4) आत्मा अमर होता है। (होती)

5) उसने एक हाथी जाती हुई देखी। (जाता हुआ देखा)

6) गुणवान महिला। (गुणवती महिला)

7) मुझे चाय पीना है। (पीनी)

8) सुभद्रा कुमारी चौहान कवि हैं। (कवयित्री)

3. समास संबंधी अशुद्धियाँ :

दो या दो से अधिक पदों का समास करने पर प्रत्ययों का उचित प्रयोग न करने से जो शब्द बनता है, उसमें कभी-कभी अशुद्धियाँ रह जाती हैं। जैसे-

अशुध्द	**शुद्ध**
निरपराधी	निरपराध
प्राणीमात्र	प्राणिमात्र
पिताभक्ति	पितृभक्ति
महाराजा	महाराज
नवरात्रा	नवरात्र

4. संधि संबंधी अशुध्दियाँ :

अशुध्द	**शुध्द**
उपरोक्त	उपर्युक्त
सदोपदेश	सदुपदेश
सदेव	सदैव
अत्याधिक	अत्यधिक
सन्मुख	सम्मुख
दुरावस्था	दुरवस्था

5. विशेष्य-विशेषण संबंधी अशुद्धियाँ :

अशुध्द	**शुध्द**
लाचारवश	लाचारीवश
गोपन कथा	गोपनीय कथा
विद्वान नारी	विदुषी नारी
सुखमय शांति	सुखमयी शांति
महान कार्य	महत्कार्य

6. प्रत्यय-उपसर्ग संबंधी अशुद्धियाँ :

अशुध्द	**शुध्द**
सौन्दर्यता	सौन्दर्य

अज्ञानता	अज्ञान
भूगौलिक	भौगोलिक
निरस	नीरस
लाघवता	लाघव
मिठासता	मिठास

7. वचन संबंधी अशुद्धियाँ :

1. हस्ताक्षर, प्राण, दर्शन, आँसू आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है।
2. 'या', 'अथवा' का प्रयोग करने पर क्रिया एकवचन होती है। लेकिन 'और', 'एवं', 'तथा' का प्रयोग करने पर क्रिया बहुवचन होती है।

उदाहरण -

1) दो पुस्तक खरीद लाया। (पुस्तकें)
2) आज मैंने मंदिर में भगवान का दर्शन किया। (के, किये)
3) आज मेरा भाई आये। (मेरे)
4) फूल की माला लाओ। (फूलों)
5) यह पुस्तक किसका है? (ये, किसकी, हैं)

8. कारक संबंधी अशुद्धियाँ :

अ= अशुद्ध , शु. = शुध्द)

अ- मोहन घर नहीं है।
शु. - मोहन घर पर नहीं है।
अ- उसको काम करने दो।
शु. - उसे काम करने दो।
अ- चार बजने को पंद्रह मिनट हैं।
शु. - चार बजने में पंद्रह मिनट हैं।
अ- यहाँ बहुत से लोग रहते हैं।
शु. - यहाँ बहुत लोग रहते हैं।

8. शब्द-क्रम संबंधी अशुद्धियाँ :

अ. - वह स्कूल है जाता।

शु. - वह स्कूल जाता है।

अ. - 'पृथ्वीराज रासो' रचना चन्दवरदाई की है।

शु. - चन्दवरदाई की रचना 'पृथ्वीराज रासो' है।

9. वाक्य-रचना संबंधी अशुद्धियाँ एवं सुधार :

1) उचित विराम-चिह्न का प्रयोग न करने से अथवा शब्दों को उचित क्रम में न रखने पर भी अशुद्धियाँ रह जाती हैं।
2) वाक्य-रचना में कभी विशेषण का विशेष्य के अनुसार उचित लिंग एवं वचन में प्रयोग न करने से या गलत कारक-चिह्न का प्रयोग करने से अशुद्धियाँ रह जाती हैं।

उदाहरण :

अ. - मेरे भाई को मैंने रुपये दिये।

शु. - अपने भाई को मैंने रुपये दिये।

अ. - यह पुस्तक बड़ी छोटी है।

शु. - यह पुस्तक बहुत ही छोटी है।

अ. - वह प्रातः काल के समय घूमने जाता है।

शु. - वह प्रातः काल घूमने जाता है।

अ. - वह निरपराधी था।

शु. - वह निरपराध था।

अ. - वह मुझे देखा तो घबरा गया।

शु. - उसने मुझे देखा तो घबरा गया।

अ. - वह चित्र सुंदरतापूर्ण है।

शु. - वह चित्र सुंदर है।

अ. - वह गया।

शु. - वह चला गया।

अ. - हमने चाय अभी-अभी पिया है।

शु. - हमने चाय अभी-अभी पी है।

अ. - शेर को देखते ही उसका होश उड़ गया।

शु. - शेर को देखते ही उसके होश उड़ गये।

अ. - पेड़ों पर पक्षी बैठा है।

शु. - पेड़ पर पक्षी बैठा है।

सामान्यतः अशुद्धि किए जाने वाले प्रमुख शब्द :

अशुद्ध	**शुध्द**
अतिथी	अतिथि
अन्धेरा	अँधेरा
अहिल्या	अहल्या
अनूपम	अनुपम
आदेस	आदेश
आखर	अक्षर
ईमारत	इमारत
केन्द्रिय	केन्द्रीय
करूणा	करुणा
कुतूहल	कौतूहल
कोमुदी	कौमुदी
खेतीहर	खेतिहर
नर्क	नरक
चेत्र	चैत्र
तरिका	तरीका
तत्व	तत्त्व
तदानुकूल	तदनुकूल
दयालू	दयालु

4.7 शब्द-अर्थ सम्बन्ध

'शब्द' भाषा की सबसे सार्थक इकाई होती है। एक या अधिक वर्णों से बनी हुई स्वतंत्र एवं सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं। जैसे - 'मैं', 'वह', 'तू' आदि। शब्द के माध्यम से भाषा

का समस्त कार्य-व्यापार चलता है। बिना शब्द के भाषा का अस्तित्व नहीं; कामता प्रसाद गुरु ने शब्द को परिभाषित करते हुये लिखा है - "एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।"

अर्थ के आधार पर शब्दों के दो भेद हैं - 1) सार्थक 2) निरर्थक

1) **सार्थक :** जिनसे किसी अर्थ का ज्ञान होता है, वे सार्थक शब्द हैं। जैसे - राम, श्याम, मोहन, सीधा आदि।

2) **निरर्थक :** जिनसे किसी अर्थ का ज्ञान नहीं होता, उन शब्दों को निरर्थक शब्द कहते हैं। जैसे - कल्ल, पथम आदि।

'का' और 'म' अक्षरों के मेल से 'काम' शब्द बना है। 'काम' शब्द से कार्य करने का अर्थ निकलता है, इसलिए इसे शब्द कहेंगे। शब्द उसे ही कहेंगे जिससे किसी अर्थ का भाव सामने आता हो। कई बार ऐसा होता है कि दो अक्षरों का मेल तो अवश्य होता है पर उससे कोई अर्थ सामने नहीं आता। जैसे - 'प', 'थ' और 'म' अक्षरों के मेल से 'पथम' शब्द बना है लेकिन हिन्दी में इसका कोई अर्थ नहीं। अतः इसे हम शब्द नहीं कहेंगे। व्याकरण में केवल सार्थक शब्दों का वर्णन किया जाता है। निरर्थक शब्दों का वर्णन उसमें तभी होता है, जब वे सार्थक बना लिए जाते हैं।

शब्द एक ध्वन्यात्मक संकेत होता है जो किसी वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है। शब्द जिस वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है वही उसका अर्थ होता है। शब्द के द्वारा जो प्रतीति होती है, उसे अर्थ कहते हैं। शब्द और अर्थ के संबंध में कुछ बाते ध्यान देने योग्य हैं -

1) शब्द से अर्थ कि प्रतीति दो प्रकार से होती है - 'आत्मप्रत्यक्ष' एवं 'परप्रत्यक्ष'। 'आत्मप्रत्यक्ष' उसे कहेंगे जिस वस्तु को हमने स्वयं देखा और उसके लिए निर्धारित शब्द के उच्चारण से अर्थ की प्रतीति हो। जैसे - 'आम'। आम को हमने स्वयं देखा है और आम के उच्चारण से उसके अर्थ की प्रतीति होती है। जिस शब्द से अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों पर आश्रित रहना होता है उसे परप्रत्यक्ष कहते हैं।
2) शब्द की महत्ता अर्थ के अभाव में नहीं होती। अमूर्त अर्थ का मूर्त रूप शब्द होता है।
3) शब्द और अर्थ का संबंध यादृच्छिक होता है। 'कलम' कहने से एक खास वस्तु का बोध होता है जिससे हम लिखते हैं। यह अर्थ यादृच्छिक है। यह हमारा माना हुआ है। कल से हम

'कलम' शब्द रेल के लिए रखे तो कलम कहने से रेल का बोध होगा। अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द के साथ अर्थ का स्थायी संबंध नहीं होता।

4) किसी एक वस्तु कि प्रतीति के लिए एक ही शब्द नहीं होता। एक वस्तु के लिए कई पर्यायवाची शब्द हो सकते हैं। जैसे - 'पानी' को 'जल' भी कहते हैं।

4.8 विलोम शब्द

'विलोम' का अर्थ होता है 'उल्टा'। जब किसी शब्द का उल्टा या विपरीत अर्थ दिया जाता है उस शब्द को विलोम शब्द कहते हैं। अर्थात एक-दूसरे के विपरीत या उल्टा अर्थ देने वाले शब्दों को विलोम शब्द क़हते हैं। इसे विपरीतार्थक शब्द भी कहते हैं। जैसे - 'सुख' शब्द का विलोम शब्द 'दुख' होगा। दो विलोम शब्द एक-दूसरे का विलोम होते हैं। जैसे 'सुख' का विलोम शब्द 'दुख' है तो 'दुख' का विलोम शब्द 'सुख' होगा। उदाहरणस्वरूप कुछ शब्द के विलोम शब्द हम देख सकते हैं -

शब्द	**विलोम शब्द**
आरंभ	अंत
अंधकार	आलोक
इच्छा	अनिच्छा
उपकार	अपकार
उत्कृष्ट	निकृष्ट
उतार	चढ़ाव
उचित	अनुचित
उपयोगी	अनुपयोगी
प्रश्न	उत्तर
एकत्र	सर्वत्र
एक	अनेक
आकाश	पाताल
आवश्यक	अनावश्यक

4.9 पर्यायवाची शब्द

'पर्याय' का अर्थ है - 'समान' तथा 'वाची' का अर्थ है - 'बोले जाने वाले'। अर्थात जिन शब्दों का अर्थ एक जैसा होता है, उन्हें 'पर्यायवाची शब्द' कहते हैं। यह बात ध्यान देने की है कि प्रत्येक पर्यायवाची शब्द बिलकुल समान अर्थ कि अभिव्यंचना नहीं करते। प्रत्येक शब्द का निश्चित अर्थ होता है जो किसी अन्य शब्द द्वारा प्रकट करना कठिन है। 'जलज' और 'पंकज' शब्द 'कमल' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। जल में पैदा होने वाली हर वस्तु को 'जलज' तथा 'पंक' अर्थात 'कीचड़' में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु को पंकज कहते हैं। जल और पंक में पैदा होने के कारण कमल को जलज और पंकज भी कहते हैं।

कुछ पर्यायवाची शब्द देखें जा सकते हैं -

1) **आग** - अग्नि, अनल, पावक, दहन।
2) **अंधकार** - अँधेरा, तिमिर, तम।
3) **अतिथि** - पाहुन, मेहमान, अभ्यागत।
4) **अनुपम** - अनूठा, अनोखा, अपूर्व, निराला।
5) **अन्य** - पृथक, और, भिन्न, दूसरा।
6) **आभूषण** - विभूषण, भूषण, गहना, अलंकार।
7) **असुर** - दैत्य, दानव, राक्षस, निशाचर।
8) **अहंकार** - गर्व, अभिमान, मद, घमंड।
9) **आँख** - लोचन, नयन, नेत्र, चक्षु, विलोचन, दृष्टि।
10) **आकाश** - नभ, गगन, अम्बर, आसमान, व्योम।
11) **आनंद** - हर्ष, सुख, प्रमोद, उल्लास।
12) **आँसू** - नेत्रजल, नयनजल, अश्रु।
13) **इच्छा** - अभिलाषा, चाह, कामना, लालसा, मनोरथ, आकांक्षा।
14) **उत्साह** - आवेग, जोश, उमंग।
15) **कमल** - पंकज, नीरज, सरोज, जलज।
16) **कोमल** - नाजुक, नरम, सुकुमार, मुलायम।
17) **कृपा** - प्रसाद, दया, अनुग्रह।
18) **चरण** - पद, पग, पाँव, पैर।
19) **क्रोध** - रोष, कोप, अमर्ष, कोह।

20) **झूठ** - असत्य, मिथ्या, मृषा, अनृत।

21) **तालाब** - सरोवर, जलाशय, पोखरा।

22) **दुख** - पीड़ा, कष्ट, व्यथा, वेदना, संताप, शोक।

23) **धरती** - पृथ्वी, भू, भूमि, धरणी, वसुंधरा, अचला, रत्नवती।

24) **ध्वनि** - स्वर, आवाज़, आहट।

25) **नया** - नूतन, नाव, नवीन, नव्य।

26) **पहाड़** - पर्वत, गिरि, अचल, नग, भूधर, महीधर।

27) **मनुष्य** - आदमी, नर, मानव, मानुष, मनुज।

28) **साँप** - सर्प, नाग, विषधर, भुजंग।

29) **संसार** - जग, विश्व, जगत, लोक, दुनिया।

30) **हाथी** - गज, हस्ती, मतंग।

31) **मृत्यु** - देहांत, मौत, अंत, स्वर्गवास, मरण।

32) **रात** - रात्रि, रैन, रजनी, निशा, यामिनी, तमी, निशि, यामा।

33) **निरादर** - अपमान, उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार, अवज्ञा।

34) **बादल** - मेघ, घन, जलधर, जलद, नीरद, सारंग।

35) **वृक्ष** - पेड़, पादप, विटप, तरु, द्रुम।

4.10 मुहावरा

'मुहावरे' ऐसे वाक्यांश होते हैं, जिनसे वाक्य सुसंगठित, चमत्कारजनक और सारगर्भ बनते हैं। मुहावरे का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं हो सकता। 'अंगार बरसना' या 'आँख मिलाना' मुहावरे हैं। हम इनका प्रयोग वाक्य के अंतर्गत ही करेंगे। मुहावरों में शब्दों का सामान्य अर्थ नहीं लिया जाता, वरन विशेष लाक्षणिक अर्थ लिया जाता है।

हिन्दी के कुछ प्रचलित मुहावरे, उनके अर्थ तथा वाक्य में प्रयोग को उदाहरणस्वरूप निम्न प्रकार से देख सकते हैं -

1)अंगार उगलना (अत्यधिक क्रोध में भला-बुरा कहना) :- बिना बात के राम मोहन पर चिढ़कर अंगार उगल रहा है।

2)अंधे की लाठी (एकमात्र सहारा) :- बुढ़ापे में उसकी बेटी ही अब उस अंधे की लाठी है।

3)अपना उल्लू सीधा करना (अपना मतलब निकालना) :- काम होते ही रोहित ने अपना उल्लू सीधा किया।

4)आसमान टूट पड़ना (अचानक विपत्ति आ पड़ना) :- सड़क हादसे में माँ-बाप की मृत्यु हो गयी। बेचारे पर आसमान टूट पड़ा।

5)ईद का चाँद होना (बहुत दिनों बाद दिखना) :- राम ने मोहन से कहा कि तुम तो ईद का चाँद हो गये।

6)गागर में सागर भरना (थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह देना) :- आज गीता ने गागर में सागर भर दिया।

7)चार दिन की चाँदनी (थोड़े दिनों के लिए सुख) :- उसे नहीं पता था की उसका आना बस चार दिन की चाँदनी है।

8)जमीन आसमान एक करना (पूरी जी जान लगा देना) :- राम ने परीक्षा में उतीर्ण होने के लिए जमीन आसमान एक कर दिया।

9)टेढ़ी खीर (कठिन काम) :- मोहन को कुछ समझना टेढ़ी खीर है।

10) नजर रखना (ध्यान रखना) :- भाई! इस लड़के पर ज़रा नजर रखना।

11) कान पर जूँ तक न रेंगना (कुछ भी ध्यान न देना) :- उसे लाख समझाओ, फिर भी उसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

12) जान खाना (तंग करना) :- देखो भाई, जान मत खाओ, मौका मिलते ही तुम्हारा काम कर दूँगा।

13) नाक में दम करना (परेशान करना) :- श्याम ने अपने दादा के नाक में दम कर रखा है।

14) पसीना-पसीना होना (लज्जित होना) :- जबसे मैंने उसकी यह चोरी पकड़ी तबसे वह मुझे देखकर पसीना-पसीना हो जाता है।

15) सिर उठाना (विरोध करना) :- अपने साथ हो रहे शोषण के प्रति सिर उठाना चाहिए।

16) चेहरा बिगाड़ना (बहुत पीटना) :- फिर बदमाशी की, तो चेहरा बिगाड़ दूँगा।

17) दाँत खट्टे करना (पराजित करना) :- कर्ण ने महाभारत-युद्ध में पांडवों के दाँत खट्टे कर दिये थे।

18) कलम तोड़ना (अत्यधिक लिखना) :- उसने इस पत्र में कलम तोड़ दिया।

19) दल-दल में फँसना (आफत में फँसना) :- मैं उस अपराधी पर दया कर दल-दल में फंस गया।

20) हँसी उड़ाना (उपहास करना) :- कृष्ण ने गणेश की हँसी उड़ायी।

4.11 लोकोक्तियाँ (कहावतें)

'लोकोक्ति' शब्द लोक और उक्ति शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ है - लोक में प्रचलित उक्ति या कथन। संस्कृत में 'लोकोक्ति' अलंकार का एक भेद भी है तथा सामान्य अर्थ में लोकोक्ति को 'कहावत' कहा जाता है। अतः किसी विशेष स्थान पर प्रसिद्ध हो जाने वाले कथन को लोकोक्ति कहते हैं।

लोकोक्तियाँ ऐसे कथन या वाक्य हैं जिनके स्वरूप में समय के अंतराल के बाद भी परिवर्तन नहीं होता और न ही लोकोक्ति व्याकरण के नियमों से प्रभावित होती है। अर्थात लिंग, वचन, काल आदि का प्रभाव लोकोक्ति पर नहीं पड़ता। लोकोक्ति के पीछे कोई एक कहानी अथवा घटना जुड़ी होती है। वही कहानी अथवा घटना कालांतर में जब लोगों की जुबान पर प्रचलित हो जाती है, तब 'लोकोक्ति' कहलाती है।

4.11.1 मुहावरा और कहावत (लोकोक्ति) की तुलना

मुहावरे	लोकोक्तियाँ
• मुहावरे वाक्यांश होते हैं, पूर्ण वाक्य नहीं। जैसे - अपना उल्लू सीधा करना, कलम तोड़ना आदि।	• लोकोक्तियाँ पूर्ण वाक्य होती है। इनमें कुछ घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। भाषा में प्रयोग की दृष्टि से विद्यमान रहती हैं। जैसे - चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात।
• मुहावरा वाक्य का अंश होता है, इसलिए उनका स्वतंत्र प्रयोग संभव नहीं है, उनका प्रयोग वाक्यों के अंतर्गत ही संभव है।	• लोकोक्ति एक पूरे वाक्य के रूप में होती है, इसलिए उनका स्वतंत्र प्रयोग संभव है।
• मुहावरे शब्दों के लाक्षणिक या व्यंजनात्मक प्रयोग हैं।	• लोकोक्तियाँ वाक्यों के लाक्षणिक या व्यंजनात्मक प्रयोग हैं।
• मुहावरे अतिशय पूर्ण नहीं होते।	• लोकोक्तियाँ अतिशयोक्तियाँ बन जाती हैं।
• मुहावरे किसी क्रिया को पूरा करने का काम करते हैं।	• लोकोक्ति का प्रयोग किसी कथन के खंडन या मंडन में प्रयुक्त किया जाता है।
• मुहावरे किसी स्थिति या क्रिया की ओर	• लोकोक्तियाँ जीवन के भोगे हुये यथार्थ को

संकेत करते हैं। जैसे - हाथ मलना, मुँह फुलाना।	व्यंजित करती हैं। जैसे - न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी, नाच न जाने आँगन टेढ़ा।

कुछ कहावतों को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है -

1) **अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता** (कोई बड़ा कार्य एक आदमी के वश की बात नहीं) :- आप क्या समझते हैं, अकेले ही मंदिर बना लेंगे ? इसमें समाज की मदद लेनी ही होगी। ठीक ही कहा गया है - 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता'।

2) **ऊँट के मुँह में जीरा** (ज़रूरत से बहुत कम) :- इन महोदय को दो रोटी से क्या होगा? यह तो ऊँट के मुँह में जीरे वाली बात है।

3) **गुरु गुर, चेला चीनी** (गुरु से शिष्य का आगे बढ़ जाना) :- ओमनाथ बच्चो को 'क, ख...' ही सीखाते रह गए और उनके कितने शिष्य डॉक्टर, इंजीनियर बन गये। गुरु गुर ही रह गये और चेले चीनी हुये।

4) **जान है तो जहान है** (जीवन ही सब कुछ है) :- नक्सल प्रभावित क्षेत्र में जान जाने का खतरा देख उसने नौकरी करने से मना करते हुये कहा - 'जान है तो जहान है'।

5) **आम के आम गुठलियों के दाम** (हर तरह से लाभ) :- रमेश के तो आम के आम गुठली के दाम हुये पड़े हैं।

6) **आटे के साथ घुन भी पिसता है** (अपराधी के साथ निरपराध भी दंडित होता है) :- सच ही कहा था गणेश चोर ने राम को की उसकी बात न मानकर कहीं ऐसा न हो की आटे के साथ घुन भी पिस जाए है।

7) **हाथ कंगन को आरसी क्या** (प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण क्या) :- लड़का शाम को मुझसे पढ़ने आएगा ही। देख लेना उसे कि वह अपनी उषा के लायक है कि नहीं। हाथ कंगन को आरसी क्या।

8) **एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है** (एक बुरा व्यक्ति पूरे समाज को बदनाम कर देता है) :- रमेश ने अपने घर में अवैध शराब बेचकर शान्तिप्रिय मोहल्ले को शराबियों का अड्डा बना दिया है। ठीक ही कहा गया है, एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है।

9) **काला अक्षर भैंस बराबर** (निरक्षर आदमी) :- ओमप्रकाश को बही खाते का हिसाब दिखाना काला अक्षर भैंस बराबर है।

10) हाथी चले बाज़ार, कुत्ता भौंके हजार (लोगों की बातों पर ध्यान न देकर अपने काम से मतलब रखना) :- लोगों की बाते सुने बिना रमेश जब ऊँचे पद पर पहुँचा तब यह बात सिद्ध हुई की हाथी चले बाज़ार, कुत्ता भौंके हजार।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. हिन्दी में लिंग निर्णय कितने प्रकार के होते हैं?
2. हिन्दी में कारकों की संख्या कितने प्रकार की होती है?
3. संस्कृत भाषा के दो पुलिंग शब्द बताइए जो हिन्दी में स्त्रीलिंग हैं।
4. वचन के प्रकार बताइये?
5. काल के कितने भेद होते हैं?

4.12 सारांश

हिन्दी में लिंग दो प्रकार के होते हैं - पुलिंग और स्त्रीलिंग। लेकिन एक बात जानने योग्य है कि हिंदी व्याकरण में जहाँ-जहाँ काठिन्य का आरोप किया गया है, उनमें लिंग का प्रथम स्थान है। लिंग-निर्णय सचमुच अभ्यास और स्मरण की अपेक्षा रखता है। लिंग निर्णय हिन्दी में एक पूर्ण मुश्किल कार्य है। लिंग निर्णय दो प्रकार से किया जाता है - 1. शब्द के अर्थ के आधार पर 2. उसके रूप के आधार पर।

संज्ञा अथवा सर्वनाम का वह रूप, जो वाक्य के अन्य शब्दों, विशेषतः क्रिया से अपना संबंध प्रकट करता है, 'कारक' कहा जाता है। प्रत्येक पूर्ण वाक्य में संज्ञाओं तथा सर्वनामों का मुख्य रूप से क्रियाओं के साथ और गौण रूप से आपस में भी संबंध रहता है। जैसे - 'राम ने रावण को मारा'।

हिन्दी में वचन दो है - एकवचन और बहुवचन।

एकवचन (Singular Number) - जो एक संज्ञा का ज्ञान कराता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे - लड़का, गाय, लड़की, कपड़ा, नदी आदि।

बहुवचन (Plural Number) - जो एक से अधिक संख्या का ज्ञान कराता है, उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे - लड़के, गाये, लड़कियाँ, कपड़े, नदियाँ आदि।

'काल' क्रिया का वह रूप है, जिससे उसके करने या होने के समय तथा पूर्णता अथवा अपूर्णता का ज्ञान होता है। काल के तीन भेद है - 1) भूतकाल, 2) भविष्य काल तथा 3) वर्तमान काल।

किसी भाषा की समस्त ध्वनियों को सही ढंग से उच्चरित करने हेतु वर्तनी की एकरूपता स्थापित की जाती है। वर्तनी का सीधा संबंध भाषागत ध्वनियों के उच्चारण से है।
कामता प्रसाद गुरु ने शब्द को परिभाषित करते हुये लिखा है - "एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।"

'विलोम' का अर्थ होता है 'उल्टा'। जब किसी शब्द का उल्टा या विपरीत अर्थ दिया जाता है उस शब्द को विलोम शब्द कहते हैं। अर्थात एक-दूसरे के विपरीत या उल्टा अर्थ देने वाले शब्दों को विलोम शब्द क़हते हैं।

जिन शब्दों का अर्थ एक जैसा होता है, उन्हें 'पर्यायवाची शब्द' कहते हैं। 'मुहावरे' ऐसे वाक्यांश होते हैं, जिनसे वाक्य सुसंगठित, चमत्कारजनक और सारगर्भ बनते हैं। 'अंगार बरसना' या 'आँख मिलाना' मुहावरे हैं।

'लोकोक्ति' शब्द लोक और उक्ति शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ है - लोक में प्रचलित उक्ति या कथन। संस्कृत में 'लोकोक्ति' अलंकार का एक भेद भी है तथा सामान्य अर्थ में लोकोक्ति को 'कहावत' कहा जाता है। अतः किसी विशेष स्थान पर प्रसिद्ध हो जाने वाले कथन को लोकोक्ति कहते हैं

4.13 मुख्य शब्दावली

- **यादृच्छिक** : स्वतंत्र या ऐच्छिक
- **अलगाव :** दूरी, अलग रखने का भाव।
- **अपवाद :** सामान्य नियम से भिन्न बात।
- **प्रतीति :** प्रतीत होने की क्रिया।
- **संश्लिष्ट :** जोड़ा हुआ, मिलाया हुआ।
- **समीचीन :** यथार्थ, उचित।
- **सोपान :** सीढ़ी।
- **संभाव्य :** हो सकने योग्य।
- **संदिग्ध :** संदेहयुक्त।

4.14 'अपनी प्रगति जाँचिये' के उत्तर

1. दो ।
2. आठ ।
3. देवता, तारा।
4. दो, एकवचन एवं बहुवचन।
5. तीन, वर्तमान काल, भूतकाल तथा भविष्य काल।

4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. वचन की परिभाषा स्पष्ट करते हुये वचनों के प्रकार बताइये।
2. कारक की परिभाषा बताइये।
3. 'मुहावरा' और 'लोकोक्ति' के अंतर को बताते हुये उदाहरण प्रस्तुत करें।
4. पर्यायवाची शब्द की परिभाषा उदाहरण सहित दीजिये।
5. निम्न मुहावरों को वाक्यों द्वारा स्पष्ट कीजिये -

1) डूबते को तिनके का सहारा।
2) गागर में सागर भरना।
3) आँख का तारा।
4) आसमान टूट पड़ना।

6. निम्न लोकोक्तियों का अर्थ स्पष्ट करते हुये वाक्यों में प्रयोग कीजिये-

1) जान है तो जहान है।
2) काला अक्सर भैंस बराबर।
3) गेहूं के साथ घुन भी पिसता है।
4) अंधों में काना राजा।

4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. हिन्दी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरु, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
2. हिन्दी भाषा : संरचना और प्रयोग, डॉ. भोलानाथ तिवारी व डॉ. रविंद्रनाथ श्रीवास्तव।
3. हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक व्याकरण - केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।
4- सामान्य हिंदी - पृथ्वी नाथ पाण्डेय, नालंदा प्रकाशन घर ।
5- हिंदी शब्द अर्थ प्रयोग - डॉ. हरदेव बाहरी ।

इकाई 5 निबंध-लेखन

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय

5.1 इकाई का उद्देश्य

5.2 निबंध क्या है?

5.3 निबंध की परिभाषा

5.4 निबंध के प्रकार

5.5 निबंध के तत्व

5.6 निबंध-लेखन कैसे करें?

5.7 निबंध-लेखन की विशेषताएँ

5.8 निबंध-लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियाँ

5.9 निबंध-लेखन

5.9.1 विज्ञान विषय से संबंधित निबंध

5.9.2 समसामयिक विषय से संबंधित निबंध

5.9.3 अरुणाचल प्रदेश से संबंधित निबंध

5.9.4 हिंदी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित निबंध

5.9.5 अन्य विषय

5.10 सारांश

5.11 मुख्य शब्दावली

5.12 अपनी प्रगति जाँचिए' के उत्तर

5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

लेखन एक कला है। इस कौशल में पारंगत होने के लिए अनुभव, अंतर्दृष्टि और भाषा तीनों की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत इकाई में हम निबंध-लेखन की बारीकियों को जानेगें। बात निबंध (essay) की करें तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि यह 'प्रबंध' (Treatise) और 'लेख' (Article) से किस तरह भिन्न है। 'निबंध' और 'प्रबंध' ये दोनों ही शब्द संस्कृत के हैं। जिस ग्रंथ में एक ही विषय के प्रतिपादनार्थ अनेक व्याख्याएँ संगृहीत होती थीं उसे 'निबंध' कहते थे। वहीं 'प्रबंध' का क्षेत्र निबंध की अपेक्षा अधिक व्यापक था। 'प्रबंध' में विभिन्न विषयों से संबंधित अनेक मत संगृहीत होते थे। कसावट दोनों की मुख्य विशेषता मानी जा सकती है। वहीं 'लेख' की चर्चा करें तो लेख का सामान्य अर्थ 'लिखा हुआ' है। 'लिखा हुआ' निबंध भी हो

सकता है। किन्तु दोनों के विषय-प्रतिपादन शैली में अंतर है। व्यक्तित्व-विहीन किसी भी विषय का सांगोपांग विवेचन लेख होता है और व्यक्तित्वनिष्ठ, विषय का सुसंबद्ध प्रतिपादन निबंध कहलाता है।

5.1 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई की सहायता से आप:-

-निबंध क्या है और इसके बनावट के आधार को जान पायेंगे;

-निबंध लेखन की विभिन्न विधियों को जान पायेंगे;

-निबंध की विशेषताओं से अवगत हो पायेंगे;

-निबंध किस तरह लिखा जाना चाहिये इसकी आपको सूक्ष्म जानकारी मिलेगी;

-निबंध लेखन के दौरान किन सावधानियों को बरता जाना चाहिए इससे आप अवगत हो पाएंगे।

5.2 निबंध क्या है ?

निबंध शब्द की व्युत्पत्ति 'नि' उपसर्ग और 'बंध' धातु के संयोग से है। 'नि' शब्द का अर्थ है भली या विशेष प्रकार से और 'बंध' शब्द का अर्थ है बाँधना। प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबंध शब्द का प्रयोग एकत्र करना, बाँधना आदि अर्थों में ही होता था। भोजपत्रों आदि पर लिखी गई खुले पृष्ठों की पोथियों को बाँधने की प्रक्रिया निबंधन कहलाती थी। निबंधन का एक अर्थ एकत्र करना, एक साथ समेटना भी है। कालांतर में 'निबंधन' शब्द विकसित होकर, 'निबंध' के रूप में प्रयोग में आया। 'निबंध' क्रमहीन विचारों को भाषा के माध्यम से बांधने की

प्रक्रिया स्वरुप एक लेखन विधा के रूप में सामने आई। इस विधा का जन्म फ्रांस में हुआ था। इस विधा के जन्मदाता और पितामाह मानतेन को माना जाता है।

5.3 निबंध की परिभाषा

यहाँ कुछ वुद्वानो द्वारा निबंध की परिभाषा प्रस्तुत की जा रही है -

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी स्वानुभूति से संपन्न एवं व्यक्तित्व से पूर्ण प्रतिबिंबित गद्य-रचना को निबंध मानते हैं। वे लिखते हैं "असंपूर्णता का विचार न करने वाला गद्य-रचना का वह प्रकार जिसमें स्वानुभूति की प्रधानता हो, विषय निरूपण में स्वतंत्रता हो, जिसमे लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हो, जिसकी शैली मौलिक तथा साहित्य कोटि की हो, निबंध कहलायेगा।''

आचार्य गुलाबराय के अनुसार "निबंध उस गद्य-रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर भी ऐसे विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया हो।''

अंग्रेजी-साहित्य के प्रथम निबंधकार लार्ड बेकन (Bacon) ने निबंध को despersed meditation (बिखरावयुक्त चिंतन) कहा है। वे लिखते हैं "The word essay is late, but the thing is ancient. For Seneca's Epistles to Lucillius, if one mark them well, are but essays, that is, dispersed meditation."

5.4 निबंध के प्रकार

डॉक्टर गणपति गुप्त ने निबंध के पाँच प्रकार (भेद)बताए हैं-

1. विचारात्मक निबंध

2. भावात्मक निबंध

3. वर्णात्मक निबन्ध

4. विवरणात्मक निबंध

5. आत्मपरक निबंध

1. विचारात्मक निबंध- गंभीर विषयों पर चिंतन मनन करके लिखे गए निबंध विचारात्मक निबंध होते हैं। इनमें बुद्धि की प्रधानता होती है और विचारसूत्रों की प्रमुखता रहती है। लेखक का हृदय पक्ष दबा रहता है तथा बुद्धि पक्ष की प्रबलता इन निबंधों में दिखाई पड़ती है। निबंधों में विचारों की एक श्रृंखला रहती है और सारे विचार पूर्वापर संबंध से एक सूत्र में जुड़े रहते हैं। निबंधों में कहीं व्यास शैली, कहीं समास शैली, और कहीं सूत्र शैली अपनायी जाती है। भाषा विषय के अनुसार प्रौढ़, गंभीर एवं संस्कृतनिष्ठ रहती है। हिंदी में इस प्रकार के निबंध लेखक हैं- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्याम सुंदरदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉक्टर नगेन्द्र आदि।

2. भावात्मक निबंध- भावात्मक निबंध में भाव पक्ष की प्रधानता होती है। भावात्मक निबंध लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। हिंदी में लिखे गए वे निबंध जिनमें वैयक्तिक संस्पर्श है, संस्मरणात्मक तथ्य दिये गये हैं अथवा जिनमें हास्य व्यंग्य की प्रधानता है, इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकार सबंधी निबंधों में से कुछ इसी कोटि के हैं। ऐसे निबंधों के लिए उनकी यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- "यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ न कुछ पाता रहा है।" उनके चिंतामणि में संकलित निबंध- उत्साह, करुणा, आदि इसी प्रकार के हैं। हिंदी में भावात्मक निबंधकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंधकार हैं- अध्यापक पुर्णसिंह। उनके निबंध आचरण की सभ्यता, मज़दूरी और प्रेम, पवित्रता ,आदि इसी प्रकार के भावनात्मक निबंध हैं।

3. वर्णात्मक निबन्ध- इस तरह के निबंधों में निबंधकार किसी घटना, तथ्य, दृश्य, वस्तु, स्थान आदि का क्रमबद्ध वर्णन इस प्रकार करता है कि पाठक के समक्ष वह दृश्य या घटना साकार हो जाती है। वर्णनात्मक निबंधों में बौद्धिकता एवं भावुकता का सामंजस्य रहता है। भाषा सरल एवं सुबोध रहती है तथा लेखक का ध्यान तथ्य निरूपण पर आधिक रहता है, कल्पना पर कम।

हिंदी में बालकृष्ण भट्ट , बाबू गुलाबराय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर एवं रामवृक्ष बेनीपुरी के निबंध इसी श्रेणी के हैं।

4. विवरणात्मक निबंध-विवरणात्मक निबंधों में ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक घटनाओं का विवरण दिया जाता है तथा उनमें कल्पना का भी यथोचित समावेश होता है। वर्णन संवेदनशील एवं मार्मिक होते हैं तथा उनमें क्रमबद्धता पर विशेष बल नहीं होता। वर्णन का संबंध वर्तमान से होता है जबकि विवरण का भूतकाल से। हिंदी के प्रारंभिक निबंधकार-भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र , शुव पूजन सहाय ने विवरणात्मक निबंध लिखे हैं।

5. आत्मपरक निबंध-यद्यपि हर प्रकार के निबंध में लेखक के व्यक्तित्व पूरी तरह उभरभर सामने आता है। वर्तमान युग में लिखे जाने वाले लालित्य का समावेश भाषा, विषयवस्तु, शैली-शिल्प में किया जाता है। लेखक का पाण्डित्य, लोक संपृक्ति एवं भाषागत सौंदर्य ऐसे निबंधों में साफ झलकता है। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय हिंदी के प्रमुख ललित निबंधकार हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. विवेकी राय, देवेंद्र सत्यार्थी ने भी आत्मपरक निबंधों की रचना की है।

5.5 निबंध के तत्व

मुख्यत: निबंध तीन प्रमुख तत्व हैं। इन्ही के माध्यम से किसी भी निबंध को गढ़ा जाता है। ये तीन तत्व हैं- वैयक्तिकता, वैचारिकता और शैली।

वैयक्तिकता- कोई भी निबंध तब तक निबंध नही माना जा सकता जब तक कि उसमें से लेखक का व्यक्तित्व न झाँक रहा हो। निबंध विधा के जन्मदाता मानतेन ने कहा है कि अपने "निबंधों का विषय मैं हूँ और मैं अपनी मन की मौज में निबंध लिखता हूँ।" निबंध का असल सौंदर्य इसी वैयक्तिकता में रहता है।

वैचारिकता-वैचारिकता निबंध का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है निबंध ऐसी विधा है जिनमें विचारों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। किसी भी निबंध में वैचारिकता का अभाव उसके स्वरूप को बिगाड़ देता है वहीं विचारों के स्थान पर केवल तथ्यों का प्रयोग इसे निबंध की बजाय 'लेख' बना देता है।

शैली- शैली से तात्पर्य विधा को लिखते समय उस 'तरीके' से है जिससे वह अन्य रचनाओं से भिन्न प्रतीत होता है। शैली निबंध का प्राण है। निबंध के बाह्य सौंदर्य का आधार शैली ही है। चित्रमयता, विषय प्रतिपादन, शब्द-विन्यास आदि का सफल समन्वय शैली के अंतर्गत आते हैं। शैली ही वस्तुतः निबंधकार के व्यक्तित्व की परिचायक है। शब्द नियोजन, वस्तु-योजना तथा व्यक्तित्व- ये तीनों विशिष्टताएं शैली का निर्माण करती हैं।

5.6 निबंध-लेखन कैसे करें?

निबंध लेखन कैसे करें आइये इसे हम तीन महत्वपूर्ण चरणों द्वारा जाने-

पहला चरण - इस चरण के दो भाग है। एक निबंध-लेखन के पूर्व की स्थिति और एक निबंध-लेखन की आरंभिक स्थिति। निबंध-लेखन के पूर्व की स्थिति में आप विषय का चुनाव करते हैं। विषय निर्धारण के पश्चात उससे सम्बंधित प्रमुख बिन्दुओं को रफ़-कार्य के तौर पर नोट कर लेना चाहिए। प्रत्येक विषय अपने आप में विचारों की पोटली है। क्यूंकि निबंध ऐसी विधा है जहाँ निबंधकार स्वतंत्र रूप से अपनी बात रखता है तो यह और भी ज़रूरी हो जाता है की विषय के प्रति निबंधकार का तय राय हो अन्यथा निबंध लिखते वक्त विचारों का भटकाव उसको लेखन में बाधित करेगा ही साथ ही पाठक भी भ्रमित हो जायेगा की आखिर निबंध लिखने वाला व्यक्ति कहना क्या चाहता है? निबंध व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत किया जाये इसके लिये रफ़-कार्य के तौर पर आप निबन्ध-प्रारूप भी तैयार कर सकते हैं। निबंध-लेखन की आरंभिक स्थिति, प्रस्तावना के रूप में हमारे सामने आती है। प्रस्तावना, आरम्भ बिंदु है। यह एक ही अनुछेद का होता है। इसकी शुरुआत किसी पद, मुहावरे, गीत, व्यंग्य या फिर विषय के शाब्दिक अर्थ के द्वारा भी कर सकते हैं।

दूसरा चरण- यह प्रस्तावना के बाद की प्रक्रिया है जिसे हम निबंध-लेखन का मध्यभाग भी कहते हैं। यहाँ विषय-वस्तु का विस्तृत विवेचन किया जाता है। निबंध से जुड़े सामग्री को चार-पांच छोटे-बड़े अनुच्छेदों में इसे इस प्रकार व्यक्त कीजिये कि उसके सभी पहलुओं पर प्रकाश पड़ सके। मध्य भाग ही निबंध का विकास है। निबंध का असल स्वरुप यही तय करता है इसलिए आपको यहाँ भाषा को लेकर अत्यधिक सजग हो जाना पड़ेगा। विषय को निबंध के रूप में प्रस्तुत करने हेतु भाषा को कही सरल तो कहीं क्लिष्ट करना पड़ सकता है। यहाँ मूल विषय से भटकने की स्थिति का भी सामना करना पड़ सकता है इसके लिये आप मूल विषय को हमेशा ध्यान में रखे। क्योंकि विषय से भटकाव आपके निबंध को रुचिहीन बना सकती है। आपकी सम्प्रेषण क्षमता यहाँ अहम् भूमिका अदा करती है। बातें जितनी स्पष्ट होंगी, निबंध का सौंदर्य उतना ही बढ़ेगा।

तीसरा चरण- उपसंहार, निबंध का अंतिम भाग है। यहाँ आप विषय-वस्तु के विवेचन के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। निबंध का अंत ऐसा होना चाहिए कि उसका स्थायी प्रभाव पाठक पर पड़ सके। प्रस्तावना की भाँति उपसंहार भी एक ही अनुछेद का होता है। संक्षिप्त होने के बावजूद निबंध का ये अंश पाठक को प्रभावित करने की सबसे अधिक क्षमता रखता है। अतः इसे लिखते समय यह अवश्य ध्यान रखें की आप निबंध को आखिरी आकार दे रहे हैं। निबंध का अंत किसी लोकोक्ति, सूक्ति, अथवा अभीष्ट सामग्री के समावेश से कर सकते हैं।

5.7 निबंध लेखन की विशेषताएँ

- सीमित आकार- निबंध की मुख्य विशेषता इसका सीमित आकार है। निबंध की एक तय सीमा होती है जहाँ आपको अपने विचारों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करना होता है।
- व्यक्तित्व की अभिव्यंजना- लेखक के व्यक्तित्व का प्रकाशन निबंध का अनिवार्य तत्त्व है। पाश्चात्य लेखकों ने तो व्यक्तित्व की अभिव्यंजना के माध्यम के रूप में ही निबंध विधा को स्वीकार किया है।
- व्यवस्थित स्वरुप- निबंध में भावों और विचारों का प्रकाशन सुसम्बद्ध तथा व्यवस्थित रूप में होता है। उसका शिल्प सुसंगठित होता है। निबंध में विचारों की अभिव्यक्ति अगर व्यवस्थित ढंग से हो तो ये निबंध के

- विचार और भाव का संतुलन- चिंतन-तत्त्व के साथ भाव-तत्त्व की उपस्थिति भी अनिवार्य रूप से रहती है। विचारात्मकता के साथ भावनात्मकता का योग उसकी प्रमुख विशेषता है।
- पूर्णता- निबंध में स्वतः पूर्णता होनी चाहिए। उसकी संक्षिप्तता का अर्थ अपूर्णता नहीं है। उसके लघु आकार में पूर्णता होती है।
- रोचकता- निबंध में अन्य गद्य-रूपों की अपेक्षा रोचकता तथा जीवन्तता की मात्रा अधिक होती है।

5.8 निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियाँ

निबंध-लेखन एक कठिन कार्य है। आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल लिखते हैं "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की।" निबंध लेखन तात्कालिक कार्य नहीं। यह किसी व्यक्ति के समस्त ज्ञान और जीवनानुभवों के आधार पर लिखा जाता है। अच्छा निबंध लिखने की एक और शर्त है वो है अभ्यास। अभ्यास द्वारा आप अपनी कमियों को जान पाते हैं। यह इकाई यह जानने में आपकी मदद करेगा कि निबंध लिखते समय हमें किन बातों का ध्यान रखना चाहिए-

- विषय का चयन बहुत ही सजगता से करना चाहिए, अगर आपके पास विषयों का विकल्प मौजूद है तो आप प्रयास करें की वही विषय चुने जिसे आप करीब से जानते हैं। कई बार हम ऐसे विषय चुन लेते हैं जो दिखने में बहुत ही सरल लगते हैं परन्तु इसका लेखन के रूप में निर्वाह, मुश्किल हो जाता है। ऐसी स्थिति न उत्पन्न हो अतः बहुत ही सोच-विचार कर विषय को चुने।

- निबंध-प्रारूप, आपके निबंध को एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध रखेगा। इसके बगैर ही अगर आपने लेखन आरम्भ कर दिया है तो आप विषय बिंदु से भटक सकते हैं।

- विषय के सन्दर्भ में आपके पास तथ्य होना ,निबंध को मज़बूत अकार देना है। मगर कई बार तथ्यों को सही तरीके से न प्रस्तुत कर पाना निबंध को कमज़ोर बना देता है। अतः यह आवश्यक है कि तथ्यों और निबंधों में मौजूद विचारों के बीच तालमेल अवश्य हो। यही आपके निबंध सही अकार देंगे।

- भाषा बहुत ही लचीली होनी चाहिए, लचीलेपन में एक गतिशीलता होती है।

- विषय सम्बंधित जानकारी होना अलग बात है और जानकारी को रोचक ढंग से प्रस्तुत करना अलग। निबंध विचारों को साझा करने का एक मंच है यहं अप तय समय के लिये खड़े होकर अपनी बात रखते हैं सहृदय आपकी बैटन को सुने इसके लिये यह अनिवार्य शर्त है की आपकी बातों में रोचकता हो।

- शब्दसीमा, सबसे अहम् बिंदु है। आरंभ में ही शब्दसीमा को ध्यान में रखकर यह तय कर लें कि प्रस्तावना मध्य भाग ओय फिर उपसंहार के लिये कितना स्थान निर्धारित करना है।

- यह ध्यान रखना चाहिए कि निबंध में अगर आप तथ्यों, किन्ही घटनाओं या आंकड़ों की जानकारी दे रहे हैं तो वे सटीक होने चाहिए। निराधार सूचनाओं से बचना चाहिए।

5.9 निबंध-लेखन

5.9.1 विज्ञान विषय से संबंधित निबंध

विज्ञान और युद्ध

विज्ञान और युद्ध दोनों के मूल में जायें तो पाएँगे कि ये दोनों ही एक दूसरे के एकदम उलट हैं। एक का निर्माण मानव समाज को विकास के पथ पर ले जाने के उद्देश्य से हुआ है तो

वहीं दूसरे ने मानव सभ्यता को पीछे की ओर ढकेला है। वर्चस्व और असुरक्षा की भावना ने युद्ध को जन्म दिया और युद्ध ने विज्ञान को हथियार बना लिया। युद्ध पर साहिर लुधियानवी की एक बड़ी ही मशहूर नज़्म है ऐ शरीफ़ इंसानों इसकी कुछ की पंक्तियां इस तरह है-

जंग तो ख़ुद हीं एक मसला है

जंग क्या मसलों का हल देगी

आग और खून आज बख़्शेगी

भूख और अहतयाज कल देगी

यह सोचने वाली बात है कि आखिर जंग से क्या सच में किसी चीज़ का हल निकाला जा सकता है। यह तो अपने-आप में ही एक बहुत बड़ी विभीषिका, मृत्यु एंव सर्वनाश को दिया जाने वाला निमंत्रण है ।सदियों से, युद्ध लड़े जा रहे हैं। युद्ध लड़े ही नहीं जाते रहे, बल्कि इसे एक पवित्र धर्म मान लिया गया है। जब युद्ध को धर्म समझा जाता था, तब एक तो युद्ध विशेष भू-भाग तक सीमित हुआ करते थे और दूसरे उसके कुछ कठोर नियम-धर्म भी अवश्य थे। तब एक भू-भाग पर योद्धा लड़ते रहते थे, जबकि उसके आस-पास किसान हल जोतते या फसलें बोते-काटते रहा करते थे। ऐसा करते समय उन्हें अपने प्राणों या फसलों की हानि होने की कोई आशंका नहीं हुआ करती थी। पर जब से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने इस धरा पर कदम रखे हैं, विशेषकर युद्धक सामग्रियों का निर्माण शुरू किया है, युद्ध की अवधारणा और स्वरूप ही एकदम बदल गए हैं। आज का युद्ध मैदानों के बिना दफ्तर या जमीनदोज तहखानों में वैसे जनरलों द्वारा लड़ा जाता है। युद्ध हमसे हजारों मील दूर ही क्यों न हो रहा हो, प्राण जाने का भय सर्वत्र, हर पल-क्षण, छोटे-बड़े हर प्राणी को समान रूप में बना रहता है। 6 अगस्त 1945 की सुबह हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिकी वायु सेना द्वारा परमाणु बमबारी ने न जाने कितनी जाने तबाह कर दी। इस तरह की घटनाएँ विज्ञान और युद्ध पर सीधा सवाल खड़ा करती हैं।

आज युद्ध लड़ने के लिए सेनापतियों को किसी कुरुक्षेत्र, पानीपत या ट्रॉय के मैदान में आकर, बिगुल आदि बजाकर चुनौती देने और नारे लगाने नहीं पड़ते, बल्कि जैसा कि ऊपर कह आए हैं, सेनापति तो किसी सुरक्षित भूमिगत स्थान पर बैठे हो सकते हैं। उनके सामने एक और नक्शा दूसरी ओर इलेक्ट्रॉनिक पर्दा रहता है। उस पर कुछ धब्बे उठते हैं। कोई बटन दबकर

अलार्म बजता है और युद्धक विमान शब्द की गति से भी तेज उडक़र जब बम बरसा वापिस आ चुके होते हैं, तब पता चल पाता है कि कहीं युद्ध हो रहा है। प्रथम विश्व-युद्ध तक तो फिर भी कुछ कुशल रही, पर द्वितीय विश्वयुद्ध में जब अमेरिका द्वारा हिराशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम छोड़े गए, तब से युद्धों का स्वरूप बहुत ही भयानक से भयानकतम हो गया है। इसी कारण आज छोटे-बड़े सभी चिंतित हैं कि यदि वैज्ञानिक निर्माणों में कोई गुणात्मक परिवर्तन न लाया जा सका, तो किसी दिन कोई निहित स्वार्थी मौत का सौदागर कहीं अणु, उदजन, कोबॉल्ट या अन्य प्रकार का कोई भीषणतम बम फेंककर सारी स्वतंत्रता सारी मानवता का दम घोंटकर रख देगा। कितना भयावह होगा वह दिन। ऊपर जिन भयानकतम बमों का उल्लेख किया गया है, वे तो हैं ही, उनके अतिरिक्त आज के विज्ञान ने ऐसे-ऐसे दूरमारक अस्त्रों, दमघोंटू गैसों, जैविक रसायनों का निर्माण कर लिया है कि इनके प्रयोग से एक देश दूसरे को घर बैठे ही विनिष्ट कर सकता है विनाश से अप्रभावित चाहे वह स्वंय भी नहीं रहेगा। बमों से, गैसों से निकलने वाले विषैले तत्व हमवा में घुलकर जानदार प्राणियों के ही नहीं वनस्पतियों तक के गले घोंटकर रख देंगे। वह सैलानी हवा जिधर भी रुख कर गुजर जाएगी, उधर ही विनाश-बल्कि महानाश बरपा हो जाएगा। फिर भला किसी के भी इस प्रकार के मारक शस्त्रों-गैसों का प्रयोग करने वालों का भी सुरक्षित रह पाना कहां संभव हो पाएगा? दूसरों को मारने के इच्छुक स्वंय भी बच नहीं पाएंगे। इस प्रकार आज के वैज्ञानिक युग में युद्ध का अर्थ है न केवल मानवता का, बल्कि अन्य सभी प्राणियों, वनस्पतीयों एंव प्राणदायक तत्वों का भी सर्वनाश! उस भावी सर्वनाश की कल्पना से ही प्रकंपित होकर आज का वैज्ञानिक मानव बचाव का उपाय सोचने को विवश हो उठा है।

भावी युद्ध एंव विनाश से बचने का एक ही उपाय है। वह यह कि इस अथा्रत युद्धक सामग्रियों के निर्माण की दिशा में मानवता के कदम जहां तक बढ़ चुके हैं, वहीं रुक जाएं। तेयार सामग्रियों को पूर्णतया अटलांटिक साग की गहराइयों में डुबोकर विनष्ट कर दिया जाए। आगे से किसी भी स्तर पर, किसी भी रूप में युद्धक सामग्रियों के निर्माण पर सभी राष्ट्र सच्चे मन से प्रतिबंध लगा दें। विज्ञान की शक्तियों का प्रयोग मानवीय भाईचारे के निर्माण-विस्तार की दिशा में करें। यदि ऐसा न किया गया और किसी की भी भूल से युद्ध छिड़ गया तो विज्ञान का यह युद्धक अजगर बैठे-बिठाए सारी मानवता को निगल जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं। तब या तो मानवता बचेगी ही नहीं, यदि कोई बचेगा भी तो अपने आधे-अधूरेपन में मानवता के लिए

धिक्कार और पश्चताप बनकर ही ज्यों-त्यों जी पाएगा। इन विषम स्थितियों को आने से रोकने की हरचंद्र कोशिश करनी चाहिए। वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ इस दिशा में प्रयासमूलक नारे तो अवश्य उछाल रहे हैं, पर लगता है कि ऐसा सच्चे मन से नहीं कर रहे हैं। तभी तो अभी तक कोई परिणाम सामने नहीं आ पाया है। निश्चय ही चिंता की बात है। विज्ञान केवल हमारे विकास का साधन होना चाहिए न कि विनाश का । साहिर लुधियानवी लिखते हैं-

टैंक आगे बढें कि पीछे हटें

कोख धरती की बाँझ होती है

फ़तह का जश्न हो कि हार का सोग

जिंदगी मय्यतों पे रोती है।

इसलिए ऐ शरीफ इंसानों

जंग टलती रहे तो बेहतर है

आप और हम सभी के आँगन में

शमा जलती रहे तो बेहतर है।

5.9.2 समसामयिक विषय से संबंधित निबंध

प्रदूषण की समस्या

प्रदूषण की समस्या आज मानव समाज के सामने खड़ी सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। पिछले कुछ दशकों में प्रदूषण जिस तेजी से बढ़ा है उसने भविष्य में जीवन के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगाना शुरू कर दिया है। संसार के सारे देश इससे होनेवाली हानियों को लेकर चिंतित है। संसार भर के वैज्ञानिक आए दिन प्रदूषण से संबंधित रिपोर्ट प्रकाशित करते रहते हैं और आनेवाले खतरे के प्रति हमें आगाह करते रहते हैं।

आज से कुछ दशकों पहले तक कोई प्रदूषण की समस्या को गंभीरता से नहीं लेता था। प्रकृति से संसाधनों को प्राप्त करना मनुष्य के लिए सामान्य बात थी। उस समय बहुत कम लोग ही यह सोच सके थे कि संसाधनों का अंधाधुंध उपयोग हानि भी पहुँचा सकता है| हम जितना भी प्रकृति से लेते, प्रकृति उतने संसाधन दोबारा पैदा कर देती | ऐसा लगता था जैसे प्रकृति का भंडार असीमित है, कभी ख़त्म ही नहीं होगा लेकिन जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ने लगी, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ता गया। वनों को काटा गया, अयस्कों के लिए जमीनों को खोदा गया। मशीनों ने इस काम में और तेजी ला दी। औद्योगिक क्रांति का प्रभाव लोगों को पर्यावरण पर दिखने लगा। जंगल ख़त्म होने लगे। उसके बदले बड़ी-बड़ी इमारतें, कल-कारखाने खुलने लगे। इससे प्रदूषण की समस्या हमारे सर पर आकर खड़ी हो गई।

आज प्रदूषण के कारण शहरों की हवा इतनी दूषित हो गई है कि मनुष्य के लिए साँस लेना मुश्किल हो गया है। गाड़ियों और कारखानों से निकलनेवाला धुआँ हवा में जहर घोल रहा है। इससे तेजी से वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। देश की राजधानी दिल्ली में तो प्रदूषण ने खतरे का निशान पार कर लिया है | कारखानों से निकलने वाला कचरा नदियों और नालों में बहा दिया जाता है|। इससे होनेवाले जलप्रदूषण के कारण लोगों के लिए अब पीने लायक पानी मिलना मुश्किल हो गया है। खेत में खाद के रूप में प्रयोग होनेवाले रासायनिक खादों ने खेत को बंजर बनाना शुरू कर दिया है|। इससे भूमि प्रदूषण की समस्या भी गंभीर हो गयी ह। इस तरह प्रदूषण तो बढ़ रहा है किंतु प्रदूषण दूर करने के लिए जिन वनों की जरुरत है वो दिन-ब-दिन कम हो रहे हैं।

प्रदूषण के कारण धरती का तापमान बढ़ रहा है। ओजोन लेयर में कई छेद हो चुके हैं। नदियों और समुद्रों में जीव-जंतु मर रहे हैं। कई देशों का मौसम बदल रहा है। कभी बेमौसम बरसात हो रही है तो कभी बिलकुल वर्षा नहीं हो रही | इससे खेती को बहुत नुकसान हो रहा है। ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है, जिससे समुद्र के किनारे जो देश और शहर हैं, उनके डूबने का खतरा बढ़ गया है|। हिमालय के ग्लेशियर पिघल रहे हैं|। जिससे गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र जैसी नदियों के लुप्त होने की संभावना आ गई है।

ऐसे गंभीर समय में यह आवश्यक हो गया है कि संसार के सारे देश मिलकर प्रदूषण की इस समस्या पर लगाम लगाए|। उद्योगों के लिए प्रकृति को नष्ट नहीं किया जा सकता। जब जीवन ही खतरे में पड़ रहा है तो जीवन को आरामदायक बनानेवाले उद्योग क्या काम आएँगे। अभी

हाल ही में (१२ दिसंबर २०१५) संसार के १९६ देश प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए फ्रांस की राजधानी पेरिस में इकट्ठे हुए| थे। सबने मिलकर यह निश्चय किया है कि धरती के तापमान को मौजूदा तापमान से दो डिग्री से ज्यादा बढ़ने नहीं दिया जाएगा। देर से ही सही पर यह सही दिशा में बढाया हुआ कदम है। यदि इसपर वास्तव में अमल किया गया तो पेरिस अधिवेशन मनुष्य जाति के लिए आशा की स्वर्णिम किरण साबित होगी। उम्मीद है कि हम पर्यावरण की रक्षा के लिए सही कदम उठाएँगे और आनेवाली पीढ़ी को प्रदूषण के दुष्परिणामों से बचाएँगे।

5.9.3 अरुणाचल प्रदेश से संबंधित निबंध

अरुणाचल प्रदेश में साहित्य-लेखन

अरुणाचल एक पर्वतीय राज्य है जिसके अलग अलग पर्वतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न जनजातियाँ निवास करती हैं। इन जनजातियों के बीच भौगोलिक दूरी होने की वजह से इनकी अलग अलग भाषाएँ हैं जिनके बोलने वालों के बीच आपसी संवाद कठिन है। आज़ादी के पहले तक इन समुदायों के बीच भौगोलिक बाधा के कारन बहुत अधिक संवाद-संपर्क स्थापित नहीं हो पाया था। अंग्रेजों ने यहाँ आपसी समुदाय की संस्कृति की रक्षा के लिये इस इलाके में बाहरी लोगों के निर्बाध प्रवेश को रोक दिया था। इस वजह से अरुणाचल की अनेक जनजातियाँ अपने क्षेत्रों और भाषा तक ही सीमित थीं। आज़ादी के बाद अरुणाचली समाज का आपस में और उसके साथ ही पड़ोसी राज्य असं से संपर्क बढ़ा। चूंकि अरुणाचल की कोई संपर्क भाषा नहीं थी इसलिए आरम्भ में असमिया अरुणाचल की संपर्क भाषा बन गयी और अब यह स्थान हिंदी ने ले लिया है। यहाँ अबतक तीन तरह के साहित्य मिलते हैं एक असमिया भाषा में , दुसरे इधर की स्थानीय भाषाओँ में और हिंदी में।

साहित्यिक गतिविधियों के आरंभिक दौर में असमिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसे जानने के लिये हमें लगभग आधी शताब्दी पीछे मुड़कर देखना होगा- आधुनिक शिक्षा के प्रचार प्रसार के साथ अरुणाचली युवाओं ने असमिया भाषा में साहित्य लेखन आरम्भ किया। इन्ही युवाओं में लुम्मेर दायी एक थे। ये अरुणाचल के पहले रचनाकार के रूप में जाने गए। ये मूलतः उपन्यासकार थे और असमिया भाषा में ही साहित्य लेखन करते थे। 'पहरोर हिले हिले'

(1959) इनका पहला उपन्यास इसके अतिरिक्त इन्होने उदायांचालर साधू (1959 ई.), 'पृथ्वीर हांहि' (1962 ई.), 'मोन आरू मोन'(1965 ई.), 'कन्यार मूल्य' (1965 ई.), एवं 'ऊपर महल' नामक उपन्यासों की रचना की। इनके अलावा श्री वाई. डी. थोंगची जी को उनकी असमिया कृति मौन उट मुखर हृदय पर साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ये मूलतः कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं। इनके रचना-कर्म के केंद्र में इनकी अपनी जनजाति की मान्यताएं एवं रीति-रिवाज़ हैं। इनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'सोनाम है' जिस पर एक फिल्म भी बन चुकी है। इसके अतिरिक्त उनके 'कमेंग हिमांतर साधू', 'लिड.जिंक', 'विष्णु कन्यार देशात, नमक उपन्यास एवं 'पापोर पुखुरी', 'मौन उट मुखर हृदय' एवं 'बांह फूलर गंद' नमक कथा संग्रह प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त श्री तागाड़ ताकी ने चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर 'बार्डर इमि' (सीमा अग्नि) नमक एक नाटक लिखा है, जो इस मामले में एक दुर्लभ पुस्तक है। अरुणाचल में असमिया भाषा में साहित्य लेखन और साहित्यकारों की समृद्ध परम्परा है।

असमिया के साथ-साथ अरुणाचल की स्थानीय भाषाओँ में भी कहानी, कवितायेँ लिखी गयी हैं। 'आदि' भाषा का पहला लेखक श्री ओकेप तायेंग को माना जाता है। वहीं गालो भाषा के श्रेष्ठ रचनाकारों में जुमसी सिराम का नाम लिया जाता है। कई ऐसे भी साहित्यकार भी रहे जिनकी पुस्तकें प्रकाशन के अभाव में आज तक उभर कर सामने नहीं आ पाई है।

सन 1962 में चीन के आक्रमण के बाद बड़ी संख्या में सेना के जवानों और शिक्षकों की भर्ती अरुणाचल में हुई। व्यापारी भी अरुणाचल में आये। इनमे से अधिकांश हिंदी भाषी थे। इससे अरुणाचल में हिंदी, विद्यालय से लेकर बाज़ार तक में बोली जाने लगी। पहले हिंदी को बस बोल चल के रूप में अपनाया गया पर अब स्थितियां बहुत बदल गयी हैं। वैसे तो हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति सबसे बाद में शुरू हुई लेकिन आज सबसे अधिक कहानियां, कवितायेँ इसी भाषा में लिखी जा रही हैं। जुमसी सिराम को हिंदी का पहला लेखक मन जाता है। 'शिला का रहस्य', 'जाई बोने' और 'मेरी आवाज़ सुनो' उनके बेहद चर्चित उपन्यास हैं। ताई तुगुंग नाम के युवा लेखक ने सबसे पहले अरुणाचली हिंदी में 'लाप्या' नामक एक नाटक लिखकर और

उसके दस से अधिक बेहद सफल मंचन कर हिंदी की लोकप्रिय छवि को एक नया आयाम दिया है। वहीँ जोराम यालाम द्वारा रचित साक्षी है पीपल (कहानी संग्रह) , जंगली फूल (उपन्यास), जमुना बीनी तदार द्वारा 'जब आदिवासी गाता है' (कविता संग्रह) से यहाँ का साहित्य और भी परिपक्व हुआ है।

अरुणाचल से लेखकों का एक बड़ा वर्ग उभरकर सामने आ रहा है। अरुणाचली रचनाकारों ने जो कुछ लिखा वह अपनी अन्तः प्रेरणा एवं रचनात्मक निष्ठा के कारण। न उनके रचनाओं के छपने की चिंता रही न ही नाम कमाने की भूख। जिस हवा को महसूस किया उन्हें उसी तरह शब्दों में उकेर दिया।

5.9.4 हिंदी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित निबंध

प्रगतिवाद

हिंदी-साहित्य का इतिहास में आधुनिक काल में छायावाद के बाद आरंभ के चौथे चरण को प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्य-रचना का युग स्वीकार किया गया है। इसका आरंभ सन १९३६ के आस-पास से स्वीकारा जाता है। इससे पहले वाले छायावादी-युग की कविता कल्पना-प्रधान थी, पर अब कविगण कल्पना के आकाश से उतरकर जीवन के यथार्थ से प्रेरणा लेकर धरती पर पैर जमाने लगे। फलस्वरूप कविता की जो नई धारा चली, वह प्रगतिवादी काव्यधारा कहलायी जिसके बाद गद्य-साहित्य के विधायक रूपों में भी अब काल्पनिक आदर्शों के स्थान पर यथार्थ समस्याओं और प्रश्नों का चित्रण होने लगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी चेतना ने साहित्य के गद्य-पद्यात्मक सभी रूपों को समान स्तर पर प्रभावित किया।

मानव अपने मूल स्वभाव से ही परिवर्तनशील और प्रगतिवादी माना जाता है। फिर दूसरे विश्व-युद्ध के प्रभाव ओर परिणामस्वरूप अब जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा था। फ्रांस और रूस से होने वाली जन-क्रांतियों ने तो मानव-चेतना को प्रभावित किया ही, रूसो, वाल्तेयर,

कार्लमाक्र्स और फ्रॉयड आदि चिंतकों के विचारों ने भी जीवन और समाज में आमूल-चूल परिवर्तन लाने की प्रेरणा प्रदान की। वर्ग-संघर्ष ने आर्थिक-औद्योगिक क्षेत्रों में संघर्ष की नींव डाली। वैज्ञानिक खोजों के कारण भी जीवन और समाज के परंपरागत रूपों में क्रांति आई। अब मनुष्य महज अपनी या व्यक्ति की नहीं, बल्कि समूह की बात सोचने लगा। जीवन में यांत्रिकता के बढ़ जाने के कारण कई तरह की जटिलतांए भी आती गई। भेद-भावों से ऊपर उठकर समानता का भाव भी जीवन-समाज में जागृत हुआ। इन सारे परिवर्तनों के मूल में विद्यमान चेतना को ग्रहण कर अपने गद्य-पद्यात्मक रूपों में साहित्य जो नए रूप में सिरजा जाने लगा, वही वास्तव में प्रगतिवाह कहलाता है। एक आलोचक के अनुसार- 'साहित्य अपने मूल स्वभाव में जीवन का अनुगामी तो होता ही है, कई बार उससे आगे बढक़र वह मानव-जीवन के लिए संभावित सत्यों एंव प्रगतियों की खोज भी करता है। इसी कारण वह जीवन के समान ही प्रगतिशील है। कवि और साहित्यकार किसी भी रूढ़ परंपरा के अधिक दिनों तक अनुयायी बनकर नहीं रह सकते। उनकी चेतना जीवन में आने वाले परिवर्तनों से अनुप्राणित होकर स्वत: ही नव्यता की ओर अग्रसर होती रहती है। उसी नव्यता की ओर अग्रसर होने वाली प्रवृति ने ही छायावादी युग के अंतराल से एक नई प्रवृत्ति को जन्म दिया। वह प्रवृत्ति थी मानव-प्रगतियों का दमन, शोषित-पी़डित मानव के अधिकारों की ओर जीवन-समाज का ध्यान आकर्षित करना एंव नई सहज परिवर्तित बौद्धिक-वैज्ञानिक प्रगतियों की ओर मानव-चेतना को उन्मुख करने का सशक्त प्रयास। परिणामस्वरूप छायावादी स्वरों के मध्य से ही जो नया स्वर प्रस्फुटित किया गया।' यह मान्यता स्पष्ट संकेत करती है कि छायावादी वायवता के प्रतिकारस्वरूप ही हिंदी-काव्य क्षेत्र में प्रगतिवाद का आरंभ एंव विकास संभव हो सका। यह एक निश्चित सत्य है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि प्रगतिवाद का आरंभ सन १९३६ के आस-पास हुआ था। उसके चार वर्षों अर्थात सन १९४० तक इसा क्रमश: विकसित रूप सामने आने लगा। उसके बाद से आज तक की हिंदी-काव्य की यात्रा वास्तव में प्रगतिवाद के विभिन्न एंव विविध आयामों की यात्रा कही जा सकती है। छायावाद की एक धानहालावाद और दूसरी राष्ट्रवाद के रूप में विकसित हुई थी। इस राष्ट्रवादी-काव्यधारा का ही अगला पड़ाव प्रगतिवाद कहा जा सकता है।

राष्ट्रवादी कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा रचित एक कविता से प्रगतिवाद का आरंभ स्वीकार किया गया है। उस प्रसिद्ध कविता के आरंभ की पंक्तियां देखिए –

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,

जिससे उथल-पुथल मच जाए।

नियु और उपनियों के ये,

बंधर टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाएं,

विश्वभर की पोषक वीणा-

के सब तार मूक हो जाएं।'

यहां जो उथल-पुथल यानि क्रांति मचाने और विश्वभर की वीणा के तार टूटने अर्थात परंपराओं, अंध रूढियों के समाप्त होने की कामना की गई है, वास्तव में वही प्रगतिवाद की मूल चेतना, लक्ष्य, प्रयोजन एंव हुंकार भी है। विद्वान यह भी मानते हैं कि छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता से भी प्रगतिवादी चेतना के भाव और विचार दिखाई देने लगते हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र प्रगति-कामना से बचा न रह सका। सभी जगह अस्तित्व रक्षा का गहरा भाव जागकर 'सड़े-गले अतीत के विरुद्ध गहरा असंतोष एंव विद्रोह का स्वर मुखरित करने लगा।' कवि और साहित्यकार उन सबके स्वर-से-स्वर मिलाकर अपने-अपने सृजन में दत्तचित हो उस सबका प्रतिनिधित्व करने लगे। फलस्वरूप यह नई प्रगतिवादी चेतना चारों ओर हर स्तर पर मानव-मन और जीवन-समाज को आंदोलित करने लगी। इसी संबल को पाकर शोषित-पीड़ित जन अपने को मानव समझकर संघर्षरत होने लगा। उस संघर्षमयी चेतना का काव्यात्मक चित्रण ही साहित्य-जगत में प्रगतिवाद के नाम से जाना और पुकारा जाने लगा।

कार्लमार्क्स के द्वंदात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन में प्रभावित प्रगतिवाद, पूंजीवाद और पूंजीवादी चेतना को मानवता का सबसे बड़ा दुश्मन स्वीकार करता है। इसकी मान्यता है कि जब श्रम और पंूजी का समान विभाजन होने लगेगा, तभी जाति-वर्गहीन समाज की स्थापना संभव हो सकेगी। जो इस वाद का चरम लक्ष्य है। जन-कल्याण और समाजवादी समाज की

स्थापना के इस लक्ष्य को पाने के लिए प्रगतिवाद वर्ग-संघर्ष को आवश्यक मानता है। इसके लिए ही कवि सर्वहारा वर्ग की समस्याओं को काव्यों में उतराते, व्यक्ति का विरोध कर समूह का महत्व स्वीकारते, सभी रूढिय़ों का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं। कवि और लेखक आम जनों को सभी तरह की कुंठाओं से छुटकारा दिलाने का प्रयास भी करते हैं। यही कारण हे कि प्रगतिवादी साहित्य में कल्पना को कतई महत्व नहीं दिया जाता। उसके स्ािान पर जीवन में यथार्थ का ही उदघाटन किया जाता है। सभी परंपरागत विषयों की युगानुकूल नवीन एंव उपयोगितावादी व्याख्यांए की जाती हैं ताकि सभी प्रकार के आडंबरों, पाखंडों और कुरूपताओं से जीवन को मुक्ति मिल सके। धर्म, भाज्य और भगवान को भी नितांत अनुपयोगी, मात्र विडंबना और शोषित-पीड़ित को और भी धोखे में रखकर शोषण के अस्त्र कहा जाता है। कुल मिलाकर सामूहिक स्तर पर और भौतिक मूल्यों के आधार पर मानवता का हित साधना ही प्रगतिवादी काव्यधारा का चरम लक्ष्य है।

प्रगतिवादी काव्य-चेतना में यथार्थ बोध और यथार्थ चित्रण के नाम पर कई तरह की कमियां भी रेखाांकित की जाती है। मानवता की मात्र कुरूपताओं का ही चित्रण, वह भी कई बार अश्लील वीभत्स रूप में, प्रगतिवादी धारा की सबसे प्रमुख कमी मानी जाती है। यथार्थ और प्रगति का अर्थ केवल वीभत्स, कुरूप और गंदगी का यथातथ्य चित्रण ही नहीं होत, अच्छे और स्वरूपवान का चित्रण करना भी हुआ करता है। केवल निराशाओं और कुंठाओं का चित्रण करने वाला साहित्य भी सच्चे अर्थों में प्रगतिवादी नहीं हो सकता। इसके स्थान पर मानवता का आशावादी यथार्थ स्वर मुखरित होना चाहिए। हमारे विचार में कलात्मकता को तिलांजलि देकर, भाषा की भास्वरता के स्थान पर मनगढ़ंत बातों को पश्रय देकर भी मानव-प्रगतियों का वास्तविक काव्यात्मक चित्रण संभव नहीं हो सकता। इसी प्रकार वर्ग-संघर्ष की तलवार लटकाए रखना भी उचित नहीं कहा जा सकता। इन बातों का निराकरण करके इस तथ्य का ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि जीवन और साहित्य आत्मिक स्तर पर स्वत: स्फूर्त ढंग से प्रगतिवादी हुआ करते हैं। आवश्यकता है कि उस स्वत: स्फूर्त अस्मिता को हमेशा जगाए और उजागर रखा जाए। तभी प्रगतिवाद का वास्तविक लक्ष्य पाया जा सकता है।

5.9.5 अन्य विषय

मजहब नहीं सिखाता आपस मे बैर रखना

मानव सभ्यता ने अपने विकास की गति के लिए धर्म का निर्माण किया। प्रत्येक धर्म का केंद्र मानवीय भावों का संरक्षण ही रहा है। जब धर्म के मूल में ही प्रेम, भाईचारा है प्रश्न यहाँ खड़ा होता है कि धर्म के ही आड़ में नफ़रत कैसे पनप सकती है? मजहब, धर्म, फिरका, सम्प्रदाय और पंथ आदि सभी भाववाचक संज्ञाएँ एक ही पवित्र भाव और अर्थ को प्रकट करती हैं। सभी का व्यापक अर्थ उच्च मानवीय आदर्शों और आस्थाओं से अनुप्राणित होकर विभिन्न नामों वाले एक ही ईश्वर को हाज़िर-नाज़िर मान सत्कर्म करना और समग्र रूप से अच्छा बनना है। ऐसे कर्म कि जिनके करने से मानवता ही नहीं, प्राणी मात्र और जड़ पदार्थों का भी कल्याण हो सके। इस मूल विचार से हटकर संकीर्ण-संकुचित हो जाने वाला भाव मजहब-धर्म आदि कुछ न होकर महज स्वार्थ हुआ करता है।

मजहब, धर्म, फिरका, सम्प्रदाय और पंथ वह नहीं होता कि जो मात्र बाह्य आचार ही सिखाता है और इस प्रकार एक मनुष्य को दूसरे से दूर ले जाती है। मजहब और धर्म कच्चे धागे की डोर भी नहीं होते कि जो किसी के स्पर्श मात्र से टूटकर बिखर जाएं या किसी वस्तु का धुआँ मात्र लगाने से ही अपवित्र होने की सनसनी पैदा कर दे। मजहब और धर्म तो अपने आपमें इतने पवित्र, महान और शक्तिशाली हुआ करते हैं कि उनका स्पर्श पाकर अपवित्र भी पवित्र बन जाय करते हैं। मजहब-धर्म ईंट-गारे के बने हुए भवन भी नहीं है कि जिनकी क्षति उदात्त मानवीय भावनाओं की क्षति हो और चारों तरफ़ ऐसा कहकर बावेला खड़ा किया जाए। नहीं, धर्म-मज़हब आदि इस प्रकार की समरत स्थूलताओं, कह्याचारों से ऊपर हुआ करते हैं। ऊपर रहने वाले ही जीवित रहकर अपने अनुयायियों के लिए प्रेरणा-स्त्रोत भी बने रहते हैं। अन्यथा अपनी ही भीतरी दीर्बलताओं से नष्ट हो जाया करते हैं। साथ ही अपने अनुनायियों के नाश का कारण भी बना करते हैं।

कभी भी धर्म या मजहब हमें अपने को उच्च या श्रेष्ठ समझने, दूसरे को नीच या हीन समझकर भेद-भाव करने की शिक्षा नहीं देता। सभी मजहब समानता के पक्ष-पाती हैं। सभी के सुख-दुख को समान समझ उन्हें भरसक दूर करने की प्रेरणा देते हैं। वस्तुतः मानवता, अपनी जातीयता और राष्ट्रीयता ही मजहब, धर्म और पंथ हुआ करती है। जो ऐसा नहीं समझते, उन्हें किसी देश तो क्या इस धरती पर भी बने रहने का अधिकार नहीं है। बड़े खेद की बात है कि

आज इन व्यापक और पवित्र भाववाचक संज्ञाओं की गलत-शलत व्याख्याएँ करके कुछ लोग स्वयं तो नाहक परेशान होते ह रहते हैं, दूसरों के लिये भी विनाश एवं परेशानियों की सामग्री जुटाते रहते हैं। ऐसे लोगों का प्रत्येक स्तर पर बहिष्कार और कठोर दमन परम आवश्यक है। उन्हें जड़-मूल से मिटा दिया जाना चाहिए।

हर समझदार व्यक्ति ने धर्म-मजहब की वास्तविक मर्यादा को समझ-बूझकर प्रेम और भाईचारे का ही संदेश दिया है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में इस तथ्य को पहचानकर ही अलामा इकबाल ने अपनी काव्यमयी वाणी में यह उचित संदेश दिया था-

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।

हिंदी हैं, हमवतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा।

आज भी इस सुवित्वको सत्य-संभावित मानकर इसके अनुसार आचरण करके गई देश-जाति में शांति-सुरक्षा स्थापित की जा सकती है।

5.10 सारांश

निबंध शब्द का शाब्दिक अर्थ व्यवस्तित तरीके से बंधना है। विचारों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना ही निबंध है। निबंध में विचारों की प्रधानता ज़रूर रहती है लेकिन इसे साहित्य की विधा बनाती है इसकी शैली। निबंध शैली की अन्य वैचारिक रूपों से भिन्न होती है। इसमें विचार को रोचक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है जिससे लेखकीय व्यक्तित्व का प्रकाशन हो। निबंध के पांच प्रकार होते हैं- विचारात्मक निबंध, भावात्मक निबंध, वर्णात्मक निबन्ध, विवरणात्मक निबंध और आत्मपरक निबंध। गंभीर विषयों पर चिंतन मनन करके लिखे गए निबंध विचारात्मक निबंध होते हैं। भावात्मक निबंध में भाव पक्ष की प्रधानता होती है। इस तरह के निबंध लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। वर्णात्मक निबन्ध- इस तरह के निबंध होते हैं जहाँ किसी घटना, तथ्य, दृश्य, वस्तु, स्थान आदि का क्रमबद्ध वर्णन इस प्रकार करता है कि पाठक के समक्ष वह दृश्य या घटना साकार हो जाती है। वर्णनात्मक निबंधों में बौद्धिकता एवं भावुकता का सामंजस्य रहता है। विवरणात्मक निबंधों में ऐतिहासिक,

सामाजिक, पौराणिक घटनाओं का विवरण दिया जाता है तथा उनमें कल्पना का भी यथोचित समावेश होता है। वर्णन संवेदनशील एवं मार्मिक होते हैं तथा उनमें क्रमबद्धता पर विशेष बल नहीं होता। आत्मपरक निबंधों में लेखक का पाण्डित्य, लोक संपृक्ति एवं भाषागत सौंदर्य साफ झलकता है। बात निबंध के मुख्य तत्वों की करें तो ये हैं- वैयक्तिकता, वैचारिकता और शैली। सीमित आकार, व्यक्तित्व की अभिव्यंजना, व्यवस्थित स्वरुप, विचार और भाव में संतुलन, पूर्णता और रोचकता निबंध की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

अपनी प्रगति जाँचिये

प्रश्न 1. निबंध विधा का जन्म किस देश से हुआ?

a. फ्रांस

b. जर्मनी

c. भारत

d. चीन

प्रश्न 2. आचार्य गुलाबराय के अनुसार निबंध के कितने भेद हैं ?

a. तीन

b. चार

c. पाँच

d. दो

प्रश्न 3. किस विद्वान ने निबंध को despersed meditation (बिखरावयुक्त चिंतन) कहा है।

a. लार्ड बेकन

b. मानतेन

c. आचार्य गुलाबराय

d. डॉक्टर जॉनसन

प्रश्न 4. निबंध विधा के जनक किस विद्वान् को कहा जाता है?

a. लार्ड बेकन

b. मानतेन

c. आचार्य गुलाबराय

d. डॉक्टर जॉनसन

5.11 मुख्य शब्दावली

- अभिव्यंजना- विचारों एवं भावों को प्रकट करना
- कालांतर- अपने समय के बाद होनेवाला
- निर्वाह- निबाहना
- प्रतिबिंबित- जिसकी परछाईं पड़ती हो
- फ़तह- जीत
- बंधर-
- मूक- चुप

- सांगोपांग- अंगों उपांगो सहित, अच्छी तरह से
- स्वानुभूति- अपना अनुभव

5.12 'अपनी प्रगति जाँचिए' के उत्तर

1. फ्रांस
2. पाँच
3. लार्ड बेकन
4. मानतेन

5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. निबंध क्या हैं? इसकी विषेताओं पर प्रकाश डालिये।
2. निबंध के प्रकारों पर प्रकाश डालिये।
3. निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियों को बताएँ।
4. निबंध अन्य विधाओं से किस प्रकार भिन्न है?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित विषयों में से किन्ही तीन पर अपने शब्दों में निबंध लिखिए-

1. जंगल
2. गांवों में शिक्षा
3. साम्प्रदायिकता का विष
4. नारी और नौकरी
5. बाल श्रमिक समस्या
6. साहित्य का उद्देश्य

5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- हिंदी का गद्य साहित्य: डॉ. रामचंद्र तिवारी
- आधुनिक हिंदी निबंध: राजेश शर्मा, विक्रम प्रकाशन,दिल्ली।
- गद्य की पहचान: अरुण प्रकाश, अंतिका प्रकाशन, दिल्ली।
- साहित्यिक निबंध: द्वारिका प्रसाद सक्सेना, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
- हिंदी विधाएँ: स्वरूपात्मक अध्ययन: डॉ. बैजनाथ सिंघल, हरियाणा ग्रंथ अकादमी।
- निबंध मुक्त : डॉक्टर ओमप्रकाश सारस्वत
- निबंधकार पं. विद्यानिवास मिश्र : श्रुति मुखर्जी

Institute of Distance Education
Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 | Ide Rgu | Ide Rgu | helpdesk.ide@rgu.ac.in